Dup-Chhanha

धूप-छाँह

& other stories

तथा अन्य कहानियाँ -

❀❀❀

लेखिका

स्वर्गीया "चकोरी"

"Chakori"

संकलनकर्त्ता

श्रीयुत अरुण बी० ए०

प्रकाशक
अवध-पब्लिशिंग-हाउस
लखनऊ

मूल्य १।)

मुद्रक
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स
लखनऊ

समर्पण-संदेश

मेरे जीवन की रानी,

एक दिन—यौवन के सुखद-प्रभात में ही तुमने "धूप-छाँह" की कल्पना की थी और मुझसे कहा था कि सुख-दुख के सहचर बनकर तुम उसे समझने की चेष्टा करो !

परन्तु— Short Stories

तब मैं नहीं समझ सका था ! अब, उसे समझ पाया है—तुम्हारे बिछुड़ने के बाद कि तुम सत्य कहती थीं ! लो फिर—आज तुम्हारी "धूप-छाँह" मेरे ही हाथों से तुम्हारे पास आ रही है। तुम जहाँ भी हो, इसे स्वीकार करना। अपने अरुण के इस तुच्छ प्रयास को ठुकराना नहीं !

२६ मारवाड़ी स्ट्रीट
लखनऊ.

तुम्हारा ही
अरुण.

परिचय

श्री रामेश्वरी देवी मिश्र 'चकोरी' के असमय स्वर्गवास से हिंदी की एक असाधारण प्रतिभा नष्ट हो गई। उनकी काव्य-रचनाओं से हिंदी-संसार भली प्रकार परिचित है। प्रस्तुत पुस्तक उनकी कहानियों का संग्रह है जिसमें लेखिका की प्रतिभा का एक भिन्न-क्षेत्र पाठकों के सामने आता है।

"धूपछाँह" की कहानियों में प्रधानतया प्रेम के आदर्शरूप का चित्रण देखने को मिलता है किन्तु साथ ही इनकी भावुकता एक विशेष आकर्षण है। इसके अतिरिक्त शैली की सजीवता तथा प्रवाह इनको और भी अधिक रोचक तथा हृदयग्राही बना देता है। कथोपकथन की शैली में कहानी लिखने में तो लेखिका सिद्धहस्त थी। इस शैली पर ऐसा अधिकार हिंदी के बड़े से बड़े कहानी-लेखकों की रचनाओं में भी बहुत कम देखने को मिलता है।

हिंदी का यह दुर्भाग्य था कि ऐसी शक्ति को हिंदी की अधिक दिन सेवा करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका। विश्वास है कि प्रस्तुत संग्रह हिंदी-प्रेमियों का मनोरंजन करने के साथ हिंदी की इस होनहार लेखिका की स्मृति फिर से जाग्रत् करने में सहायक होगा।

हिंदी-विभाग, धीरेन्द्र वर्मा
विश्वविद्यालय, प्रयाग। विजयदशमी, सं० २००० वि०

धूप-छाँह

एक

सकीना ने कहा—

"हाँ हाँ, करूँगी तेरे साथ ब्याह ? बड़ा आया कहीं का !"

वह रूठ गई !

अहमद ने नाव पर से डाँड़ उठाकर नीचे रेत पर रखते हुए कहा—

"क्यों सकीना ! भला यह तो बता, तुझे सूझी क्या है ?"

सकीना मुस्कराती हुई बोली—

"मालूम है अब्बा क्या कहते थे ? कहते थे कि सकीना बेगम बनेगी, शाही हरम में जायगी—हाँ"

"और ?"

"और वहाँ—अब्बा कहते थे, सैकड़ों बाँदियाँ, ग़ुलाम, खोजे, मेरी ख़िदमत में हर वक़्त हाज़िर रहेंगे—"

"और भी कुछ ?"

"हाँ हाँ, सुनता जा—अब्बा यह भी कहते थे कि बड़े बड़े बेश-क़ीमत जवाहिरात, ज़ेवर और रेशमी कपड़े पहिनने को

मिलेंगे मुझे—मैं, बेगम कहलाऊँगी बेगम! अब समझा तू?"

"और क्या क्या मिलेगा?"

"तेरा सर—कह दिया बस, बस—"

अहमद ने ख़ामोश होकर सर नीचा कर लिया। जिसके साथ बचपन से खेलते कूदते इतने साल हँसी ख़ुशी में बिताये थे—जिसे हमेशा के लिये अपनी बनाने की उम्मीद में बेचारा अहमद एक एक दिन गिन रहा था, वही सकीना, अभी से इतनी बदल गई!

सकीना ने अहमद की तरफ़ देखा—वह किसी सोच में था।

सकीना बोली—

"अहमद?"

अहमद ने सर ऊपर उठाकर उसकी तरफ़ देखा—

सकीना ने पूछा—

"अहमद! क्या मेरा बेगम बनना तुझे अच्छा नहीं लगता? ख़ुशी नहीं होती?"

अहमद ने अपने दिल की बात छिपाते हुए कहा—

"अच्छा लगता है मगर—"

"मगर?"

"ख़ुशी नहीं होती सकीना?"

"क्यों? मुझे तो बड़ी ख़ुशी होती है अहमद! और हाँ, देख, जब मैं बेगम बन जाऊँगी तब तू—तू आया करेगा मुझे देखने?"

"क्यों?"

"अरे, फिर, नाव पर हम लोग साथ साथ सैर सपाटे को जाया करेंगे—क्यों न अहमद?"

"हुँः, जाने पायेगी तब न? बेगम बन जाने के बाद परदे में रहना पड़ेगा!"

सकीना झुँझलाकर बोली—

"परदे में ? कौन कहता है ?"

"रहना ही पड़ता है—शाही हरम का यही क़ायदा है ?"

"और मैं न रहना चाहूँ तो ?"

"कैसे न रहेगी—शाह तुझे जान से मरवा डालेंगे, समझी !"

"धुत्—शाह कौन होते हैं मुझे मरवाने वाले ?"

"कौन होते हैं ? यह तो अब्बा से पूछना, उनका हुक्म, उनकी हर एक बात, माननी पड़ेगी—"

"मैं न मानूँ तो ?"

"तो फिर जान से हाथ धोना होगा—हाँ !"

"बाप रे ! बेगम बनने से यह सब भी होता है--क्या सच ?"

अहमद ने कुछ जवाब न दिया, सकीना थोड़ी देर कुछ सोचती रही फिर बोली—

"अच्छा अहमद ! एक बात है—बतायेगा ?"

"क्या ?"

सकीना अहमद के और भी पास आ गई और धीरे से बोली—

"बेगम बनने के बाद, मेरा ब्याह किससे होगा ?"

अहमद ठट्ठा कर हँस पड़ा !

भोली भाली सकीना इतना भी नहीं जानती ?

अहमद को बेतहाशा हँसते देखकर सकीना ने कहा—

"हँसता क्यों है ?"

अहमद की हँसी और भी बढ़ गई। सकीना ग़ुस्से से बोली—

"बात न चीत, हीः हीः हीः, यह क्या ?"

अहमद ने कहा—

"कुछ भी नहीं—"

"फिर ? तू हँसता क्यों है ?"

"तेरी बातों पर—तूने पूछा न कि ब्याह किससे होगा ?"

"हाँ पूछा—पूछा—फिर ? इसमें हँसने की क्या बात है ? नहीं बतायेगा ? ले, जाती हूँ—"

सकीना ने पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा उठाकर कमर पर रखा और चलने लगी। अहमद ने पुकारा—

"सकीना ! सुन तो—"

सकीना लौट पड़ी। पास आकर बोली—

"क्या ?"

"नाराज़ हो गई तू ?"

"नहीं—बहुत खुश हूँ तुझसे !"

अहमद हँसते हुए बोला—

"तो तू बेगम बनेगी, क्यों ?"

"हाँ-हाँ, कितनी मर्तबा कहूँ—पालकी में बैठकर जाऊँगी, सोलह कहार लगेंगे जिसमें, जानता है ? अब्बा कहते थे।"

"कुछ और बता सकीना ?"

"और फिर, कभी-कभी आया करूँगी यहाँ—तेरे साथ खेलने—अगर तू सीधी तरह बोलेगा मुझसे तो—नहीं तो कभी नहीं आऊँगी—"

"हुँः, कौन आने देगा यहाँ तुझको ? धरा रह जायगा सारा खेलकूद। जहाँ तू बेगम बनी, फिर सब कुछ यहाँ का यहीं रह जायगा—"

"झूठ—तू झूठ बोलता है—अब्बा ने तो नहीं बतलाया यह सब ?"

"अब्बा काहे को बतलाते ? ऐसा तो होता ही है !"

"उहुँः, तू बहकाता है मुझे जिसमें मैं बेगम न बनूँ ? अरे वाह रे अहमद ! समझ गई तेरी सब—सब चालाकी ! मगर देख—चाहे जो हो, मैं बेगम ज़रूर बनूँगी—ज़रूर बनूँगी—हाँ !"

सकीना चली गई !

अहमद देखता रह गया!

दो

शाह ने कहा—
"दाराबख़ाँ! वाक़ई तुम हो बड़े समझदार—"
दाराबख़ाँ ने झुककर सलाम करते हुए जवाब दिया—
"इस नाचीज़ के लिये हुज़ूर की मेहरबानी!"
शाह ने पूछा—
"बुड्ढा मान गया तुम्हारी बात?"
"बड़ी मुश्किलों से जहाँपनाह! उसे घंटों समझाना पड़ा तब कहीं जाकर उसने क़ुबूल किया।
"और, अशर्फ़ियाँ दे दीं उसे जैसा मैंने कहा था?"
"जी हाँ जहाँपनाह! आपके हुक्म की पूरी-पूरी तामील की गई है।"
"तो फिर दाराबख़ाँ! लड़की वाक़ई ख़ूबसूरत है?"
"ग़रीबपरवर! बस, कुछ न पूछिये—शाही हरम के ही क़ाबिल है, चाँद का टुकड़ा समझिये। माहीगीर के घर में पैदा होने से क्या हुआ, बस गुदड़ी में लाल मिलने की मसल हो गई है यहाँ—"
शाह ने हुक़्क़े की नली मुँह से लगाकर दो चार कश खींचने के बाद कहा—
"दाराबख़ाँ! अगर तुम्हारा कहना सच निकला तो निहाल कर दूँगा तुम्हें—भरपूर इनाम मिलेगा—"
"जहाँपनाह! क्यों शर्मिन्दा करते हैं ग़रीब को? हुज़ूर के ही ज़ेर-साये परवरिश पाकर इतना बड़ा हुआ, हुज़ूर का ही नमक खाता हूँ फिर मुझे किसी चीज़ की तमन्ना क्यों होगी?

यूँ तो जहाँपनाह की जूतियों की ख़ाक भी मेरे लिये तबरुक़ से भी बढ़कर है।"

शाह उसकी बात सुनकर मुस्कराये फिर बोले—

"दाराबख़्शाँ ?"

"हुज़ूर"

"तो अगले जुमे की शाम को, सब—ठीक रहेगा ?"

"जी हाँ आलीजाह ! आप यक़ीन रखें—"

शाह फिर हुक़्क़ा पीने लगे। थोड़ा ठहरकर दाराबख़्शाँ ने कहा—

"हुज़ूर ! अब इजाज़त ?"

शाह बोले—

"जाओगे ? अच्छा जाओ मगर—एक बात का ख़्याल रखना ?"

"हुक्म जहाँपनाह ?"

"देखो, किसी को कानोकान ख़बर न हो इस मामले की—फ़िलहाल ?"

"जी हुज़ूर !"

"जाओ—"

दाराबख़्शाँ चल दिया, कमरे से निकलकर वह दालान में आया। फिर इधर-उधर देखता हुआ सामने बारादरी की तरफ़ जाने लगा, किसी ने धीरे से पुकारा—

"अजी ख़ाँसाहब ?"

दाराबख़्शाँ ने चौंककर पीछे देखा—नसीबन थी, बड़ी बेगम की ख़ास बाँदी। दाराबख़्शाँ ठहर गया। नसीबन ने पास आकर पूछा—

"आज तो शाह से ख़ूब घुल रही थी ?"

दाराबख़्शाँ घबराया, नसीबन को कैसे मालूम ? क्या उसने छिपकर उसकी और शाह की सब बातचीत सुन ली ? फिर अपने को बहुत सम्हालकर उसने जवाब दिया—

"तेरा क्या ? वे हैं जहाँपनाह, मेरे आक़ा—और मैं हूँ उनका ख़ास मुलाज़िम ! ख़िदमत करता हूँ तो तुझे क्यों बुरा लगता है ?"

नसीबन हँस पड़ी, बोली—

"अजी मियाँ ! बुरा क्यों लगेगा मुझे, मैंने तो यह सोचा कि चलो इनाम इकराम मिलनेवाला है आपको, फिर ग़रीबों की याद काहे को आयेगी !"

दाराबख़ाँ के पैरों के तले से मानो ज़मीन निकल गई। सचमुच नसीबन ने सब सुन लिया, अब तो बड़ा ग़ज़ब हो गया—नसीबन यह ख़बर बड़ी बेगम तक ज़रूर पहुँचायेगी ! फिर—क्या करना चाहिये ?

दाराबख़ाँ ने बनावटी ग़ुस्से से कहा—

"नसीबन ! तेरी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। ख़ामख़ाह जो जी में आया कहने लगती है, भला कोई बात भी हो ?"

"ख़ामख़ाह ? बड़े भोले हैं न आप—निरे दूध पीते बच्चे—मासूम—क्यों न ख़ाँसाहब ?"

दाराबख़ाँ ने उसे डाँटकर कहा—

"ख़ामोश !"

"अच्छी बात है, मगर ख़ाँसाहब ! सब माल अकेले हज़म न कर पाओगे—समझे !"

नसीबन चली गई। दाराबख़ाँ कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहा फिर वह भी चला गया।

तीन

और फिर—

जुमे की शाम आ गई !

अहमद अपनी बाँसुरी हाथ में लिये सकीना के घर के

सामनेवाले बाग़ में आम के दरख़्त की एक नीची डाल पर बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। सकीना के घर में बड़ी धूमधाम थी, लोग आ जा रहे थे, सब तैयारी हो चुकी थी, सिर्फ़ शाही डोले का इन्तज़ार था।

अहमद सोचने लगा—

आज का दिन, सबकी ख़ुशी का दिन है, सकीना भी ख़ुश है क्योंकि वह बेगम बनेगी!

और वह?

उसके दिल में ख़ुशी की जगह बेचैनी का तूफ़ान उठ रहा है?

अहमद के मन में आया—

सकीना के पैरों पर गिरकर उससे कहे कि तुझे तो मैं अपने दिल की बादशाहत दे चुका हूँ—मुद्दतों पहले ही सौंप चुका हूँ फिर--फिर तू बेगम बनकर क्या करेगी?

लेकिन सकीना—

सकीना उसकी बात क्यों मानेगी!

अहमद ग़रीब है—एक ग़रीब माहीगीर का लड़का!

सकीना को चाहिये—बेशक़ीमत जवाहिरात, जेवर, रेशमी कपड़े, शाही ठाटबाठ, बाँदियाँ, ख़ोजे, हुकूमत!

यह सब तो अहमद उसे न दे सकेगा?

सकीना उसकी न हो सकेगी फिर?

इस ज़िन्दगी में न हो सकेगी उसकी?

अहमद ने एक ठण्डी साँस ली—अब क्या होगा?

सकीना आज शाम के बाद शायद उसे देखने को भी कभी न मिलेगी?

अहमद की आँखों में आँसू आ गये—

तो क्या सचमुच ही सकीना आज पराई हो जायगी?

अहमद को यक़ीन न आता था—कल शाम तक दोनों साथ-

साथ बाग़ में आँखमिचौली खेलते रहे थे !

और आज—आज तो सकीना अभी तक बाग़ में नहीं आई !

अहमद ने बुलाया भी था मगर वह नहीं आई !

क्यों नहीं आई ? क्या अभी से सकीना ऐसी बदल गई ?

अहमद ने देखा—कुछ दूर पर, कुछ लोग आ रहे थे—शाह के आदमी जान पड़ते थे और उनके बीच में था एक डोला, खूब सजा हुआ ! अहमद का दिल धड़क रहा था लेकिन उसने अपने को सम्हाला !

उसने सोचा—

दुनिया की ख़ुशी के वक्त उसका रंज करना अच्छा नहीं—

वह भी ख़ुशी मनायेगा—ख़ुश होने की कोशिश करेगा !

क्यों ? सकीना की ख़ुशी क्या उसकी ख़ुशी नहीं है ?

सकीना को अब तक क्या वह अपने दिल के क़रीब नहीं समझता ?

अहमद ने अपनी बाँसुरी होठों से लगाई—बाँसुरी बज उठी !

मगर यह क्या ? उसकी आवाज़ काँप क्यों रही है ?

और—और वह बाँसुरी पर गा क्या रहा है ?

अरे ! यह तो दर्द से भरी हुई एक रागिनी—ग़म की एक दिल हिला देनेवाली दास्तान ? अहमद की बाँसुरी—हाँ—बाँसुरी कह रही थी—

"लाश जब मक्तल से निकली, इस दिले नाशाद का !"

दिले नाशाद ? उफ़ ! सचमुच "दिले नाशाद" नहीं मानता !

रोके से नहीं रुकता—सब कुछ कह देना चाहता है !

एक ही मर्तबा अपने छिपे हुए अरमानों के ख़ाक में मिल जाने का दर्दनाक अफ़साना जाहिर कर देना चाहता है !

पर—पर यह तो ख़ुशी का मौक़ा है ! सकीना सुनेगी तो क्या कहेगी ?

ऐसा गाना तो अच्छा नहीं ?
अहमद ने जबरन बाँसुरी अपने होठों से हटा दी !
डोला और भी नज़दीक आ गया !
मगर—मगर यह क्या ?
उसकी बाँसुरी तो फिर होठों से जा लगी !
अरे ! आज तो अहमद का अपने तनोबदन पर कुछ भी क़ाबू नहीं ?
उसके हाथ अपने आप ही बाँसुरी को उठाकर उसके होठों से लगा रहे हैं ?
उफ़ ! आज तो अहमद को अपने दिल पर भी क़ाबू नहीं रहा ?
दिल रो रहा है !
और आँखें—आँखें भी तो आँसुओं से भीग रही हैं ?
अहमद क्या करे ?
बाँसुरी—बाँसुरी भी तो नहीं मानती—वह गाती है, गाती जा रही है—

"लाश जब मक़्तल से निकली, इस दिले नाशाद की !"

अहमद अपने को भूल गया—उसका अपना, अब तो कुछ भी नहीं रहा !
दिलोदिमाग़ सब कुछ अपना अपना काम अलग ही कर रहे थे !
वह एक कठपुतली के मानिन्द उनके इशारों पर नाच रहा था !
कब तक उसकी बाँसुरी यूँ ही बजती रही उसे कुछ नहीं मालूम !
सकीना का डोला पास आ गया—शाही आदमियों से घिरा हुआ—लेकिन यह क्या ? डोला तो रुक गया और उसमें से बाहर निकली सकीना ! हाँ सकीना ! अहमद देखने लगा—सकीना उसी की तरफ़ आ रही थी ! अहमद ने बाँसुरी अपने होठों से हटाना चाही, मगर वह न हटी—बजती ही रही !
अहमद का दिल धड़क रहा था !

सकीना पास आकर खड़ी हो गई—उसने पुकारा—

"अहमद !"

अहमद जाने क्या सोच रहा था !

शादी की झिलमिलाती हुई जरदोजी की पोशाक सम्हालते हुए सकीना ने आगे बढ़कर अहमद के हाथों से बाँसुरी छीनते हुए कहा—

"अहमद ?"

अहमद मानों सोते से जाग पड़ा—उसने सकीना की तरफ़ देखा—

सकीना की आँखें डबडबाई हुई थीं !

सकीना ने फिर कहा—

"अहमद ! मैं जा रही हूँ, कुछ कहते हो ?"

अहमद एक दीवाने की तरह उसे देख रहा था !

क्या कह रही है सकीना ? उसके कुछ समझ में न आता था !

कानों ने शायद सकीना की बात सुनी ही नहीं !

सकीना घबराकर फिर बोली—

"अहमद ! क्या हो गया है तुम्हें ? आज बोलते भी नहीं मुझसे ?"

अहमद हक्का-बक्का सा उसके मुँह की तरफ़ देख रहा था !

सकीना बेबसी से रो पड़ी, उसने कहा—ज़ोर से कहा—

"अहमद ?"

उसने अहमद के जानू पर अपना सर रख दिया !

किसी ने पास आकर कहा—

"बेगम साहिबा ?"

सकीना ने चौंककर पीछे देखा—शाही कामदार कह रहा था—

"बेगम साहिबा ! तशरीफ़ ले चलें, देर होती है !"

सकीना ने अपने आँसू दुपट्टे के छोर से पोंछ डाले—

उसने अहमद की आँखों से आँखें मिलाकर कहा—
"कुछ—कुछ कहते हो अहमद ? जाती है सकीना आज ?"
अहमद खामोश था—वह आस्मान की तरफ़ देख रहा था !
सकीना ने बाँसुरी उसके हाथों में वापस दे दी !
अहमद की आँखें नीची हो गईं—बाँसुरी उठकर होठों तक गई—फिर—फिर बाँसुरी बज उठी ! सकीना ज़ार ज़ार रो रही थी !
शाही कामदार फिर बोला—
"बेगम साहिबा ?"
सकीना लौटने लगी—जाते जाते उसने कई बार पीछे मुड़-कर देखा—अहमद अपनी बाँसुरी में मगन था !
डोला चल दिया ! बाँसुरी की आवाज़ बाक़ी रह गई—
"लाश जब मक़्तल से निकली, इस दिले नाशाद की !"

चार

कई दिनों बाद—
शाह ने पूछा—
"मोती बेगम ! तुम क्या सोचा करती हो चुपचाप ? अक्सर तुम्हें ग़मग़ीन देखता हूँ—इसकी वजह ?"
सकीना—क्योंकि शाही हरम में आने के बाद उसका नाम मोती बेगम हो गया था—सिर नीचा किये हुए बोली—
"कुछ भी नहीं सोचती जहाँपनाह !"
"ग़लत बात ! मोती बेगम ! दुनिया के सारे ऐशो आराम तुम्हारे लिये मैंने मुहय्या कर रखे हैं, फिर भी तुम मुझे ख़ुश नहीं नज़र आतीं ? मैंने कई मर्तबा तुमको अकेले में आँसू गिराते देखा है—क्यों ? तुम्हें कौन सी तकलीफ़ है यहाँ ?

मुझसे तो न पोशीदा रखो ? बतलाओ—उसका हत्तुल इम्कान् इन्तजाम किया जाय ?"

सकीना के चेहरे पर एक माँगी हुई सी मुस्कराहट दौड़ गई। उसने कहा—"शाहंशाह ! कैसे बताऊँ, जब मुझे कोई तकलीफ़ ही नहीं है ?"

"मगर मोती बेगम ! मुझे तो महसूस होता है—"

"कैसी बातें करते हैं जहाँपनाह ? आपकी ख़िदमत में आकर, हर तरह से .खुश हूँ, गुलज़ार हूँ—आपकी मेहरबानी से मुझे क्या नहीं हासिल ?"

शाह ने उसे सीने से लगाकर प्यार करते हुए कहा—

"जानेजाँ ! तुम अज़ीमुश्शान हो—मेरी ज़िन्दगी में यह पहला मौक़ा है जब किसी ने मेरे दिल पर क़ाबू पाया है और वह .खुशनसीब तुम हो !"

".खुदावन्द की मेहरबानी !"

सकीना ख़ामोश हो गई—सचमुच शाह उसे बहुत प्यार करते थे, शाही हरम में उसकी इज्ज़त थी, रुतबा था, फिर भी—जाने क्यों वह .खुश न थी। उस दुनिया का नयापन दिनों दिन उसके लिये मिटता जा रहा था। उसके चारों तरफ़—ऐसा जान पड़ता था—हर चीज़ में बनावट ही है ! वह सोचती थी कि किसी ने उसे हरम की चहार दीवारियों में क़ैद कर दिया है। क़ैद की उस ज़िन्दगी में—चन्दरोज़ में ही उसे महसूस होने लगा था कि उसकी आज़ादी मानों छिन गई है !

आज़ादी खोकर ही उसने बेगम का रुतबा हासिल किया है। और जब उसकी नई उमंगें मिट चुकीं—हविस का प्याला भर गया—दिल भी भर गया—तब वह उसी खोई हुई आज़ादी को फिर हासिल करने के लिये बेचैन हो उठी !

बादशाहत के सारे ऐशो-आराम दोज़ख की आग बनकर

उसको जला रहे थे—तिल-तिलकर जला रहे थे !

वह दिनोंदिन घुलने लगी थी—शाह ने यह बात ताड़ ली थी कि उसे किसी-न-किसी क़िस्म की तकलीफ़ ज़रूर है !

मगर सकीना—शादी के बाद से बिल्कुल बदल चुकी थी !

वह शाह से कुछ कहते हुए डरती थी—उसे अहमद की कही हुई बात याद थी—काश कि शाह उसकी किसी बात से नाराज़ हो गये तो—तो फिर मौत दूर न होगी ! सकीना उस वक्त मौत से बहुत डरती थी, जाने क्यों ? उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी—कुछ भी अच्छा न लगता था ! उसकी ज़िन्दगी क्या से क्या हो गई थी ? यही सब सोचते हुए सकीना ने करवट ली—शाह अपने हाथों से उसे पंखा झलते हुए बोले—

"मोती बेगम ! मैं चन्द रोज़ के लिये कश्मीर जा रहा हूँ, वहाँ का इन्तज़ाम देखकर जल्द ही वापस आऊँगा ।"

सकीना चौंककर उठ बैठी—उसने पूछा—

"क्यों ? आप चले जायेंगे ? नहीं, मैं न जाने दूँगी ?"

"जाना ही होगा मोती बेगम ! शाही हुकूमत के फ़रायज़ क्या जानो तुम ?"

"तो फिर मैं भी आपके हमराह चलूँगी जहाँपनाह !"

शाह मुस्कराते हुए बोले—

"कितनी भोली हो तुम मोती बेगम ! भला कहीं ऐसा भी हुआ करता है ?"

"मगर मैं तो ज़रूर चलूँगी जहाँपनाह ?"

"नहीं—तुम यहीं रहना, मैं बहुत जल्द वापस आऊँगा—सिर्फ़ चंद रोज़ में ?"

"उहुँः, मेरा जी न लगेगा यहाँ आप चले जायँगे तो—"

"समझता हूँ मोती बेगम ! मगर मेरी ज़िम्मेदारियाँ ? उनको क्या करूँ ?"

"फिर—मुझे क्या अपनी ज़िम्मेदारी से अलग ही एक हस्ती समझते हैं हु.जूर ?"

"मोती बेगम ! तुम नहीं जानती इन सब बातों को—"

"जानती हूँ आलीजाह ! सब कुछ जानती हूँ, आप ही नहीं जानते ! काश कि औरत का दिल पाया होता आपने ?"

सकीना उदास होकर ख़ामोश हो गई ! शाह ने कहा—

"प्यारी बेगम ! न घबराओ—तुम्हारी तबियत लगने का सामान कर दूँगा—कभी-कभी दरिया की सैर के लिये नाव पर चली जाया करना, अपनी सहेलियों के साथ खेलना—बग़ीचे में जाना, वहाँ झूला है, तालाब है और बड़े ख़ुशनुमा फूल हैं ! मोती बेगम ! मुझे इजाज़त दो—जाने दोगी न ?"

सकीना क्या कहे ! उसके दिल की बात—वही जानती थी ! उसने सिर नीचा किये हुए धीरे से जवाब दिया—

"जहाँपनाह की मर्ज़ी !"

शाह उठकर चलने लगे—उन्होंने प्यार से सकीना की तरफ़ देखा—

उसने भी शाह की तरफ़ देखा, शाह मुस्कराये !

सकीना ने मुस्कराकर सर नीचा कर लिया !

पाँच

नसीबन बोली—

"और हुजूर ! वह कल की छोकरी ? जहाँपनाह के इतना सर चढ़ गई है जिसकी इन्तिहा नहीं—जाने कैसा जादू कर दिया है उनके ऊपर ?"

बड़ी बेगम ने कहा—

"अच्छी बात है, मैं भी देखती हूँ, इस निगोड़ी को ठिकाने

न लगा दिया तो मेरा नाम नहीं—"

नसीबन तो आग में घी छोड़ती जाती थी, वह बोली—

"और सरकार ! इस झगड़े की जड़ है वही मुआ दाराबख़ाँ—ज़रा उसे भी—"

"दाराबख़ाँ ? रोटियाँ लग गई हैं उसे—शायद उसी ने मोती बेगम को पेश किया था शाह के रूबरू, क्यों ?"

"जी हाँ हुज़ूर !"

"अच्छा नसीबन ! बादशाह सलामत की सवारी अब तो क़िले के बाहर पहुँच गई होगी, क्यों न ? कितनी देर हुई उनको रवाना हुए ?"

नसीबन ने कुछ सोच कर जवाब दिया—

"काफ़ी देर हुई अब तो—यक़ीनी वे क़िले से बाहर हो गये होंगे !"

"तो फिर देख—ज़रा चल तो मेरे साथ मोती बेगम के यहाँ—"

"जैसा हुक्म हुज़ूर का—तशरीफ़ ले चलें—"

आगे आगे बड़ी बेगम और पीछे नसीबन, दोनों सकीना के महल की तरफ़ चलीं। सकीना, अपने कमरे में खिड़की के पास खड़ी हुई जालीदार परदे से बाहर की तरफ़ देख रही थी। नसीबन ने बड़ी बेगम से उधर देखने का इशारा किया—बड़ी बेगम ने होठों पर उँगली रख कर उसे ख़ामोश रहने को कहा—दोनों दबे पाँव सकीना के बिल्कुल पीछे जा खड़ी हुईं ! कुछ आहट पाकर सकीना ने घूम कर देखा और उन दोनों को अपने कमरे में खड़ा देखकर वह थोड़ा चौंकी—उसका दिल धड़कने लगा !

उसने आज से पहले बड़ी बेगम को कभी न देखा था ! वह चकरा गई—

नसीबन ने कहा—

"हुज़ूर! हमारे जहाँपनाह की बड़ी बेगम साहिबा तशरीफ़ लाई हैं—हुज़ूर! मुनासिब ताज़ीम?"

सकीना ने बड़े अदब से झुककर बड़ी बेगम को सलाम करते हुए हाथ से मसनद की तरफ़ इशारा किया—

बड़ी बेगम मुस्कराती हुई जा बैठीं! नसीबन ने फिर कहा—

"अब हुज़ूर भी तशरीफ़?"

सकीना पास ही तकिये के सहारे बैठ गई। नसीबन शरारत से मुस्कराती हुई बोली—

"आप ही हुज़ूर! हमारी नई बेगम साहिबा—मोती बेगम हैं।"

बड़ी बेगम ने धीरे से सर हिला दिया। सकीना इस तमाशे का मतलब न समझ पाती थी मगर उसे कुछ ऐसा जान पड़ता था गोया कि उसकी हँसी उड़ाई जा रही है! नई जगह में—नये लोगों के दरमियान—उसे बड़ी घबराहट मालूम होती थी!

वह अकचकाकर इधर उधर देखने लगी—

बड़ी बेगम ने पूछा—

"क्यों मोती बेगम! क्या कुछ खो गया है?

सकीना चौंक पड़ी—बोली—

"जी नहीं, खोया तो, कुछ भी नहीं, मेरी तबियत आज कुछ नासाज़ है—मेरी गुस्ताख़ी मुआफ़ करें हुज़ूर!"

बड़ी बेगम उसकी बेचैनी देखकर ठट्ठा कर हँस पड़ीं! नसीबन ने अपनी हँसी को दुपट्टे के छोर से अपना मुँह बन्द करते हुए छिपा लिया। सकीना को बड़ा गुस्सा आ रहा था—उसे यही ख़याल आता था कि शाह उसे कैसी मुसीबत में अकेली छोड़कर चले गये—शाह के सिवा वह शाही हरम में और किसी को भी अपना न समझती थी! इतने में उसकी ख़ास बाँदी लैला कमरे में आई—

सकीना को कुछ ढाढ़स हुआ, उसने कहा—
"लैला ! पान ला—"
"लाई हुज़ूर !"
लैला ने पानदान पेश किया। पान खाकर बड़ी बेगम ने कहा—
"मोती बेगम ! तुम्हें क्या घर की याद नहीं आती ?"
सकीना सोचने लगी, फिर फ़ौरन् बोली—
"आती क्यों नहीं—भला कोई अपने घर को भी भूल जाता है ?"
"यही मेरा मतलब था कहने का—मेरा ख़याल है, जब तक शाह कश्मीर से वापस आयें तब तक तुम घर जाकर सब लोगों को देख आओ—हाँ, तुम्हारे घर में है कौन कौन ?"
"जी, सभी हैं, अम्मीजान, अब्बा, मेरा छोटा भाई मुबारक और—और मेरी अन्ना—बड़ी अच्छी है वह बेगम साहिबा !"
"हाँ, मैंने सुना है—वे लोग--क्या पेशा है तुम्हारे अब्बा का ?"
"अब्बा ? अब्बा तो मछलियों का रोज़गार करते हैं—"
"समझी—माहीगीर हैं क्यों ?"
सकीना ने अपने घरवालों की ग़रीबी पर सकुचा कर सर नीचा किये हुए कहा—
"जी हाँ—मगर अब्बा के कई नौकर हैं, वे ख़ुद कोई काम नहीं करते ?"
बड़ी बेगम ने नसीबन की तरफ़ देखा। नसीबन मुस्कराई।
बड़ी बेगम ने थोड़ा ठहर कर फिर पूछा—
"अच्छा मोती बेगम ! तुम लोगों से दाराबख़्श की वाकफ़ियत कब से है ?"
सकीना ने जवाब दिया—
"दाराबख़्श ? वे मेरे अब्बा के अज़ीज़ लगते हैं—क्यों ? बात क्या है ?"

"बात ? बात कुछ भी नहीं, मैंने यूँ ही पूछा—अच्छा मोती बेगम ! अब मैं जाऊँगी, बहुत देर हुई, नमाज़ का वक्त क़रीब आ गया—"

बड़ी बेगम उठ खड़ी हुईं। सकीना उनको दरवाज़े तक पहुँचा आई।

शाही हरम के तौर-तरीक़े सब धीरे-धीरे उसने सीख लिये थे ? मगर—आज बड़ी बेगम की बातें उसे ज़रा भी अच्छी न लगी थीं !

कमरे से बाहर आते ही नसीबन ने कहा—

"मानती हूँ हुज़ूर ! आपने तो आज कमाल ही कर दिया—"

बड़ी बेगम ने सर ऊँचा करते हुए जवाब दिया—

"अब देखती हूँ इस मुए दाराबख़्शाँ को !"

वे दोनों चली गईं—सकीना ने उनकी बातें सुनीं—मगर उनका मक़सद उसकी समझ में न आया !

वह लौट कर अपने बिछौने पर जा लेटी—उसका सर चकरा रहा था !

लैला ने क़रीब आकर धीरे से पूछा—

हुज़ूर ! क्या तबियत नासाज़ है ?"

सकीना ने कहा—

"सर में कुछ दर्द मालूम होता है लैला ?"

"तो हकीम साहब को बुला लाऊँ ?"

"हकीम साहब ? ऊहुँ:—"

छः

चाँदनी रात में—

जमुना की मस्ती-भरी लहरों से अठखेलियाँ करती हुई शाही किश्ती बहाव पर झूमती हुई चली जा रही थी।

गाव-तकिये के सहारे बैठी हुई मोती बेगम—सकीना ने कहा—
"लैला ! आज की रात—आज मैं बहुत ख़ुश हूँ, क़ुदरत भी ख़ुशहाल नज़र आती है ! इसकी वजह क्या है, बता ?"
ग़रीब बाँदी कुछ न समझ सकी, उसने कहा—
"हुज़ूर ! चाँदनी रात का समाँ कुछ अजीब हुआ करता है जो दिल को मस्ती से भर देता है !"
सकीना बोली—
"और भीनी भीनी फूलों की ख़ुशबू लाती हुई हवा की थपकियाँ कैसी भली मालूम होती हैं, क्यों न लैला ?
"जी हाँ बेगम साहिबा !"
"लैला ! वाक़ई आज मैं बहुत ख़ुश हूँ, जानती है क्यों ?"
लैला सकीना की तरफ़ देखने लगी।
सकीना ने कहा—
"आज की ख़ुशी, आज़ादी की ख़ुशी है लैला ! देख—अपने चारों तरफ़ देख तो सही ! यह दरिया, इसकी लहरें भी आज़ाद हैं, आती हैं, चली जाती हैं ! किनारे के हरे भरे दरख़्त, ग़ुरूर से अपना सर ऊँचा किये खड़े झूम रहे हैं क्योंकि ये आज़ाद हैं ! और बादे सबा भी—आज़ादी में साँस लेने की वजह से, इतनी ख़ुशनुमा मालूम होती है लैला !"
लैला ने एक ठण्ढी साँस ली ! ग़ुलामी में पली हुई ज़रख़रीद बाँदी भला क्या जाने आज़ादी किसे कहते हैं !
सकीना कह रही थी—
"एक दिन था। जब मैं भी आस्मान में बिखरे हुए इन्हीं सितारों के मानिन्द आज़ाद थी, हँसती थी, इठलाती थी और क़ुदरत की हमजोली बनकर अपने दिन और रात, कब आये, कब चले गये, कुछ न जान पाती थी ! मगर—"
लैला ने सुनते सुनते पूछा—

"मगर ?"
"मगर मेरी आज़ादी छिन गई—नहीं, मैंने जान बूझकर, एक बनावटी दुनिया के सुनहलेपन के ख़याल से धोखा खाकर, झूठी ऐशो-इशरत का मज़ा लेने के इरादे से, अपनी वह आज़ादी बेच दी लैला !"
लैला ख़ामोश थी, सकीना अपने आप कहती गई—
"मैंने ग़लती की और अब पछताती हूँ लैला ! सोचती हूँ, वह खोई हुई ज़िन्दगी क्या मुझे फिर वापस मिल सकती है ? शायद—नहीं !"
सकीना ख़ामोश हो गई। उसकी आँखें भर आईं—फिर वह बोली—
"और लैला ! मेरा एक साथी था—बचपन का, मेरे साथ का खेला हुआ—वह—वह बड़ा अच्छा था ! मगर, मैंने उसे भी खो दिया—हमेशा के लिये खो दिया ! जानती है क्यों ? मैंने उसे धोखा दिया—उसके अरमानों की दुनिया अपने पैरों से रौंदती हुई अपनी ख़ुदग़र्ज़ी के दिखाये हुए रास्ते पर चली आई—और—और उसकी मज़ा ? या ख़ुदा !"
सकीना ने आँचल में मुँह छिपा लिया। वह रो रही थी !
इतने में—जाने किधर—पास ही में बाँसुरी बज उठी !
सकीना ने चौंककर लैला का हाथ पकड़ कर धीरे से कहा—
"अरी लैला ! सुन—सुन—सुन रही है यह बाँसुरी—वही—वही बजा रहा है !"
लैला बोली—
"हुज़ूर ! बड़ी भली मालूम होती है कानों को—मगर कौन है ?"
सकीना ने कहा—
"कौन है ? वही—वही जिसका अभी अभी...हाँ लैला ! तूने भी किसी को प्यार किया है ?"

"मैंने ? हुज़ूर ! हमलोगों को अपने आक़ा के सिवा और किसी के प्यार से..."

बात काट कर सकीना ने कहा—

"आक़ा नहीं—मेरा मतलब है, किसी को दिल देकर प्यार किया है ?"

लैला ने शर्मा कर सर झुका लिया। सकीना बोली—

"लैला ! सुन, यह आवाज़ पीछे के घाट पर से आ रही है, नाववालों से कह तो सही, पीछे लौट चलें—"

हुक्म की देर थी। नाव पीछे लौटी और घाट के क़रीब जाकर ठहर गई। वहाँ, एक छोटीसी किश्ती पर बैठा हुआ अहमद बाँसुरी बजा रहा था ! शाही नाव को उसने पहिचान लिया। बाँसुरी बजाना बन्द करके वह उठ खड़ा हुआ। सकीना ने देखा—सचमुच अहमद ही तो था !

.खुशी से पागल होकर उसने पुकारा—

"अहमद ?"

अहमद कुछ न बोला, सकीना ने फिर कहा—

"अहमद ! इतनी रात गये भी तुम अकेले घाट पर बैठे रहते हो ?"

अहमद ने जवाब दिया—

"हुज़ूर ! ग़रीब के लिये रात और दिन का फ़र्क़ नहीं हुआ करता। जब जी में आया, चला आया, चला गया।"

सकीना ने कहा--

"अहमद ! अब तो बड़ा सलीक़ा सीख गये ? क्या, मुझे पहिचाना नहीं ? मैं, मैं तो वही हूँ—वही—मेरी तरफ़ देखो ?"

अहमद ने कुछ शर्माते हुए जवाब दिया--

"हुज़ूर बादशाह-बेगम हैं, मोती बेगम हैं, बस इतना ही जानता हूँ—"

सकीना का दिल धड़क रहा था। वह बोली—
"तुम पागल हो गये हो अहमद! क्या आँखों से देख भी नहीं सकते मेरी तरफ़?"
अहमद सर नीचा किये हुए बोला—
"हुज़ूर का ख़याल मुमकिन है कि सही हो मगर हुज़ूर शाही बेगम के रुतबे को मद्देनज़र रखते हुए मुझे मुआफ़ करें! मैं हुज़ूर की रियाया हूँ—हुज़ूर की जानिब आँख उठाकर देखने की जुर्रत कैसे कर सकता हूँ?"
सकीना चुपचाप जहाँ की तहाँ नाव पर बैठ गई। उसने इशारा किया—नाव पीछे लौट चली। अहमद फिर अपनी बाँसुरी बजाने लगा—
सकीना बेचैन हो उठी-दोनों हाथों से अपना सर पकड़ कर बैठी रही।
लैला ने पूछा—
"हुज़ूर! यह शख्स तो पागल मालूम होता है?"
सकीना ने लैला की तरफ़ देखा, फिर बोली—
"पागल? पहले तो नहीं था, अब जरूर पागल हो गया होगा! मगर—लैला! सुन सुन—उसकी बाँसुरी! वह आज़ाद है लैला! उसकी आज़ादी?"
लैला कह गई—
"आज़ादी?"

सात

तीन दिन और तीन रातें आ-आकर चली गईं!
सकीना की घबराहट बढ़ती जाती थी—शाह अभी तक वापस नहीं आये?

मगर—उनके वापस आने पर होगा क्या ?

हरम की दीवारें, वहाँ की सजावट का सामान, सकीना को अब ज़रा भी अच्छा न लगता था! उन सब चीज़ों का नयापन मिट चुका था! सकीना ऊब रही थी!

फिर—दिन डूबा, शाम हुई—सकीना ने कहा—

"लैला !"

लैला ने क़रीब आकर कहा—

"क्या हुक्म है हुज़ूर ?"

सकीना पलँग से उठी। उसने लैला के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—

"लैला ! चल, आज फिर चलें दरिया की सैर को—"

"जी हुज़ूर ! मैं अभी इन्तज़ाम करती हूँ—"

लैला चली गई। सकीना सोचने लगी—उफ़ !

इस थोड़ी सी आज़ादी में भी साँस लेकर उसको कितनी तसल्ली हासिल होती है! क्या इन्सान आज़ादी को इतना प्यार कर सकता है?

और अहमद—अहमद की आदत में कितनी तब्दीली आ गई है? इसकी वजह? सकीना ने अपने दिल से पूछा—

अब वह सकीना नहीं बल्कि मोती बेगम क्यों है अहमद के लिये?

अहमद मोती बेगम की इज़्ज़त करता है!

मगर—मगर क्या उसके दिल में भी सकीना के लिये उतनी ही इज़्ज़त है?

और अगर हो भी तो सकीना वैसी इज़्ज़त नहीं चाहती!

अहमद के लिये तो वह सिर्फ़ उसके बचपन की सहेली—सकीना—सिर्फ़ सकीना ही बनना चाहती है! और इससे ज्यादा कुछ नहीं! मगर—क्या यह अब मुमकिन है? दुनिया

वालों को आँखों से क्या यह फ़र्क़ दूर किया जा सकता है?

सकीना की समझ में कुछ न आया—

लैला ने वापस आकर कहा—

"हु.जूर! तशरीफ़ ले चलें?"

पालकी दरवाज़े पर आ लगी थी। सकीना और लैला चल दीं—दरिया के किनारे पहुँचकर पालकी से उतरते हुए सकीना ने कहा—

"आज इस तरफ़ चलेंगे नाव पर—"

"बहुत ख़ूब—"

लैला ने इशारा किया। नाव किनारे आ लगी। दोनों बैठ गईं, नाव चल पड़ी! बहाव पर आते ही नाव तेज़ चलने लगी, सकीना ने कहा—

"लैला! वक्त के दरिया में ज़िन्दगी की किश्ती भी काश कि इतनी ही तेज़ी से चले और जल्द से जल्द मंज़िल पर पहुँचा सके तो?"

बिना कुछ समझे हुए लैला ने कहा—

"तो..."

"तो फिर इन्सान और ख़ुदा के दरमियान दुई का परदा हमेशा के लिये हट जाय, दोनों की हस्ती एक हो जाय!"

सकीना ने आसमान की तरफ़ देखा—सूरज छिप चुका था। दो-चार बादल इधर-उधर मँडला रहे थे। उन बादलों के बीच से कुछ सितारे झाँक-झाँककर नीचे देख रहे थे! दरिया के पानी में उनकी परछाईं साफ़ नज़र आ रही थी!

यकायक—बाँसुरी बज उठी!

वही दर्द से भरी हुई रागिनी—वही काँपती हुई आवाज़!

बेचैन होकर सकीना ने कहा—

"नाव किनारे लगाने का हुक्म दो लैला!"

पलक मारते ही लैला के इशारे पर नाव किनारे जा लगी।
सकीना जल्दी से नीचे उतरी और लैला भी—
लैला ने पूछा—
"हु.जूर किधर?"
अपनी पोशाक सम्हालते हुए चलते-चलते सकीना ने कहा—
"मेरे साथ आ—"
नदी के किनारे-किनारे दोनों चली जा रही थीं ! आगे सकीना, पीछे लैला ! थोड़ी दूर जाने के बाद घाट दिखाई दिया—किनारे पर बँधी हुई एक छोटी-सी किश्ती—जिसके पास ही सीढ़ियों पर बैठा हुआ अहमद बाँसुरी बजा रहा था !
सकीना पैर दबाती हुई आगे बढ़ने लगी !
लैला का दिल धड़क रहा था—मगर वह थी महज़ एक बाँदी ? आक़ा के हुक्म की पाबन्द !
वह ख़ामोश थी !

आठ

इतने में, एक दूसरी पालकी दरिया के किनारे आकर रुकी—
दाराबख़्ाँ ने नाववालों से पूछा—
"कौन आया है ?"
एक नाववाले ने जवाब दिया—
"हु.जूर मोती बेगम और उनकी बाँदी लैला ?"
बड़ी बेगम और नसीबन पालकी से उतर कर नीचे आ गई थीं—
बड़ी बेगम ने कहा—
"दाराबख़्ाँ ! अब तुम्हें सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं—"
दाराबख़्ाँ ने मानो यह बात सुनी ही नहीं—

उसने नाववाले से फिर पूछा—
"किधर गई हैं मोती बेगम ?"
नाववाले ने हाथ के इशारे से बताकर कहा—
"उस तरफ़--"
बड़ी बेगम ने कहा--
"दाराबख़्श ! शाही बेगमात के क्या यही तौरतरीक़े हुआ करते हैं ?"
दाराबख़्श ख़ामोश था। बड़ी बेगम बोलीं—
"ख़ाँसाहब ! बोलते क्यों नहीं ? जवाब दो मेरी बात का ? शाह को काश पता चल गया तो याद रखना, तुम्हारी बोटी-बोटी कुत्तों से नुचवा डाली जायगी ?"
दाराबख़्श ने घबराकर कहा—
"हुज़ूर ज़रा देर यहीं क़याम करें, मैं अभी आया—"
पलक मारते ही दाराबख़्श झाड़ियों के बीच में ग़ायब हो गया।
वह दरिया के किनारे घाट की तरफ़ भागता हुआ चला जा रहा था !
घाट पर पहुँचकर उसने देखा—
अहमद का हाथ अपने हाथ में लिये हुए सकीना पास बैठी उसके मुँह की तरफ़ देख रही है !
पत्तियों की खड़खड़ाहट हुई—
लैला चिल्ला पड़ी—
"हुज़ूर !"
सकीना ने पलट कर देखा—दाराबख़्श ?
दाराबख़्श ने कुछ बोलना चाहा मगर सकीना इसके क़ब्ल ही बोल उठी—
"तुम यहाँ किसलिये आये इस वक़्त ख़ाँ साहब ?"

दाराबख़ाँ ने उसे सर से पैर तक देखते हुए कहा—
"यही सवाल मैं आपसे करता हूँ मोती बेगम?"
"ख़ामोश! ख़ैरियत चाहते हो तो चले जाओ इसी दम यहाँ से—"
"मैं शाह का मुलाज़िम हूँ, उनका नमक खाता हूँ, आपका हुकम......"
बात काटती हुई सकीना कड़क कर बोली—
"ख़बरदार ख़ाँ साहब! जाओ यहाँ से—"
वह उठ खड़ी हुई।
"मैं नहीं जा सकता, आपको भी वापस लौटना पड़ेगा मेरे हमराह—"
"ओफ़ ओह! इतनी जुर्रत? दाराबख़ाँ! मेरी मर्ज़ी की ज़िम्मेदारी मुझ पर है!"
"मर्ज़ी? आपका ख़याल ग़लत है मोती बेगम! शाह की मर्ज़ी से जुदा आपकी मर्ज़ी कुछ भी नहीं है—आप हमारे जहाँ-पनाह की इज़्ज़त ख़ाक में मिला रही हैं—मैं आपको गिरफ़्तार......"
सकीना ने आगे बढ़कर ज़ोर से एक तमाचा दाराबख़ाँ के गाल पर जड़ दिया और कहा—
"रास्ता ले अपना—बदतमीज़! गुस्ताख़ कहीं का—"
दाराबख़ाँ चुपचाप पीछे लौटा मगर दो एक क़दम चलकर फिर ठहर कर बोला—उसके गले से काँपती हुई आवाज़ निकली—
"मोती बेगम! इसका अंजाम अच्छा नहीं, बड़ी बेगम आ रही हैं मेरे पीछे, होशियार रहना—"
वह भागता हुआ चला गया!
बड़ी बेगम का नाम सुनकर सकीना घबरा गई—अब क्या होगा?

सारा राज़ खुल चुका था—शाह की नाराज़ी—उफ़ ! उसने कहा—

"लैला !"

लैला ने पास आकर कहा—

"हुक्म हुज़ूर !"

सकीना ने अपने गले से मोतियों का एक बड़ा सा हार उतारकर उसे देते हुए कहा—

"लैला ! आज से तुझे भी आज़ाद करती हूँ, जा, अब शाही हरम में नौकरी करने की ज़रूरत न रहेगी तुझे—जा भाग जा इसके क़ब्ल कि कोई तुझे मेरे हमराह देखे—"

लैला ने अपने हाथ पर रखे हुए हार को देखा फिर सकीना की तरफ़—उसने अकचका कर पूछा—

"और हुज़ूर ? अकेली !"

"उहुँः, मैं अपना इन्तज़ाम आप कर लूँगी—तू जा लैला ! भाग जा—"

लैला की आँखें भर आईं, उसने कहा—

"नहीं हुज़ूर ! मुझे आज़ादी नहीं चाहिये—मुझे अपने क़दमों में ही पड़ा रहने दीजिये—"

सकीना ग़ुस्से से बोली—

"लैला ! मेरा हुक्म है—जा, भाग जा—ख़ुदा हाफ़िज़ !"

लैला डर गई थी—वह पीछे हटी और रास्ते के दरख़्तों की आड़ में जाकर नज़र से ओझल हो गई !

सकीना घाट की सीढ़ियों से नीचे उतरी—किनारे बँधी हुई किश्ती में बैठ कर उसने कहा—

"अहमद !"

अहमद ने उसकी तरफ़ देखा—

सकीना नाव की रस्सी खोलते हुए बोली—

"अहमद ! आते हो ? ज़िन्दगी की आख़िरी दौड़ में मेरा साथ नहीं दोगे ?"

किसी के पैरों की आहट सुनाई दी—सकीना ने चौंक कर देखा—

वह बोली—

"अहमद ! क्या डर लगता है मौत से ?"

बिना कुछ जवाब दिये अहमद कूदकर किश्ती पर जा बैठा ?

रस्सी खुल चुकी थी—दम भर में नाव बीच धार में पहुँच गई ?

डाँड़ सकीना के हाथ में था !

अहमद एक किनारे ख़ामोश बैठा हुआ कुछ सोच रहा था—उसने एक दफ़ा सकीना की तरफ़ देखा और ठण्ढी साँस ली !

बहाव पर जाती हुई नाव किनारे से बहुत दूर निकल गई !

सकीना ने डाँड़ रख दिया—उसने देखा—

किश्ती के पेंदे में एक छोटा सा बरछा रखा था !

सकीना ने उसे उठा लिया—

वह उस बरछे की नोक उँगली से टटोलते हुए बोली—

"ख़ूब तेज़ है—है न अहमद ?"

अहमद उसी की तरफ़ देख रहा था—बरछे की तरफ़ नहीं !

सकीना बेचैनी से बोल उठी—

"न बोलोगे अहमद ! बोलो—देखो, अब तो सकीना फिर तुम्हारे पास लौट आई ! याद है, तुमने एक दिन मुझसे पूछा था - ब्याह करोगी मुझसे ? वाक़ई अहमद ! आज मैं तुमसे ब्याह करने ही आई हूँ—लाओ, अपना हाथ मुझे दो ?"

अहमद के आँसू न रुक सके !

सकीना ने उसका हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा—

"अहमद ! दे दो न मुझे मेरी खोई हुई ज़िन्दगी ? बस, सिर्फ़ एक मर्तबा प्यार से मुझे पुकार कर कहो—सकीना !"

अहमद के होठ खुल गये—उसने सकीना की आँखों में आँखें डाल कर कहा—

"सकीना !"

सकीना ने अहमद का हाथ दबाते हुए अपनी आँखें बन्द करके कहा—

"फिर पुकारो एक मर्तबा ?"

अहमद ने फिर पुकारा—

"सकीना ! सकीना !!"

सकीना ने अहमद के ज़ानू पर अपना सर रख दिया—

उसके गुलाबी गालों पर अहमद के आँसू ढुलक कर गिरे और बह चले ! उन अनमोल मोतियों को कौन सम्हाले ? उनकी क़ीमत का अन्दाज़ा लगाना दुनिया वालों के लिये मुश्किल था !

गुनाह और सवाब, अच्छाई और बुराई—

इनकी हद, इनकी सूरत, इन्सान इन्सान में फ़र्क़ पैदा करके बदल जाती है !

अहमद अपने को भूलकर सकीना के घुँघराले बालों को जो हवा से इधर उधर उड़ रहे थे, सँवार रहा था !

यकायक नाव घूमने लगी—बड़े ज़ोर से चक्कर खा रही थी !

अहमद ने देखा—वह चिल्ला उठा—

"अरे भँवर ?"

सकीना ने भी देखा—सचमुच नाव भँवर में पड़ गई थी !

अहमद ने डाँड़ सम्हाला और सकीना ने बरछा—

अहमद को दूसरी तरफ़ देखता जान कर सकीना ने ज़ोर से नाव के पेंदे में बरछा मारा—नाव में एक बड़ा भारी छेद हो गया—पानी भरने लगा !

अहमद ख़ामोश खड़ा देख रहा था ! सकीना ने कहा—

"बस, हम अपनी मंज़िल तै कर चुके क्यों न अहमद ?"

"हाँ सकीना !"

अहमद ने सकीना को अपने सीने से लगा लिया—

किश्ती डूब रही थी !

सकीना ने धीरे से पुकारा—

"अहमद !"

अहमद ने जवाब दिया—

"सकीना !"

दोनों ने आँखें मूँद लीं !

ज़ोर से आती हुई एक लहर ने उस किश्ती को पानी की गहराई में छिपा लिया और छिपा लिया उन दोनों दीवानों के गुनाह को—सवाब को !

दुनिया चाहे जो समझ ले !!



[क]

वह बड़ी सुन्दरी थी !

चाँदनी सी उज्ज्वल, हीरे सी चमकीली, स्वर्ण सी मोहक और—और सुरा सी मादक !

उसकी गुलाबी आँखें थीं, गुलाबी गाल और गुलाबी अधर !

हाँ, वह स्वयं ही गुलाब के फूल जैसी थी !

वह भावुक थी। उसके अधखुले अधरों में एक मधुर कम्पन था ! उसकी बड़ी-बड़ी बोलती-सी आँखों में एक अस्फुट आकांक्षा थी !

वह संसार में अकेली परन्तु गम्भीर थी।

वह फूलों को प्यार करती थी, कलियों को चूमती थी ! और हरी-हरी घास पर बैठकर जाने क्या सोचा करती थी !

उसके सुनहले बालों को समीर सहलाता था—वृक्ष उसे देखकर हिल उठते थे—वह तमाम ओस के मोतियों से गुँथ जाती थी !

वह सुन्दरी थी !

हाँ, वह अनिंद्य सुन्दरी थी !

[ख]

वह विरक्त था !
उसके हृदय में कोई उमंग नहीं थी ! वह भूल जाना चाहता था कि संसार क्या है, प्रकृति क्या है और वह स्वयं क्या है ?
वह न किसी से बोलता और न हँसता था कभी !
वह दिन में और कभी-कभी रात में भी सितार बजाया करता।
उसी सितार के तारों की झन्कार में सब कुछ विस्मृत कर देना चाहता था !
उसकी कर्कश, टेढ़ी उँगलियाँ, महीन तारों से उलझ-उलझकर एक भुवनमोहिनी ध्वनि से तन्मयता का राज्य स्थापित किये देती थीं !
उसके भद्दे, काले होठों से जब काँपती हुई संगीत-ध्वनि निकलती तो प्रकृति विमुग्ध हो जाती, आते जाते थके हुए राहगीर क्षणभर भूले से खड़े हो जाते !
उसकी छोटी-छोटी परन्तु दीप्त आँखें—
प्रकृति के हरे भरे आँचल में कुछ खोजने लगतीं—
सितार बजा करता—
अधर गाते रहते—
यही उसका नित्य-कर्म था !
और—वह भी ऐसा ही समझता था !

[ग]

सूर्य की अंतिम किरणें, संसार से विदा माँग रही थीं—
माली ने बाग़ को सींच दिया था !

क्यारियों में फूल खिल उठे थे, छोटे-छोटे पौधे तन्मय होकर झूम रहे थे !

उसने—

थोड़े से फूल तोड़कर इधर उधर बिखरा दिये—

फिर कुछ सोचकर—

धूल में पड़े हुए उन्हीं फूलों को सावधानी से समेटने लगी !

सहसा किसी ने गाया—

"कोई न सुख सोया, करके प्रीति !"

उसकी चकित आँखें चारों ओर घूमकर लौट आईं !

उसने तन्मय होकर—

बेसुध होकर सुना वह गीत !

फूल, पत्ते, पेड़, पौधे, सभी गा रहे थे !

सितार बज रहा था—

प्रकृति ऊँघ रही थी—

उस संगीत-धारा में, वह स्वयं बह गई !

चन्द्रदेव ने चुपके से आकर उस उद्यान को चाँदी से नहला दिया !

संगीत के साथ ही साथ उसकी तंद्रा टूटी—

उसका हृदय गायक को देखने के लिये मचल उठा—

उसके भोले प्राणों में एक मधुर पीड़ा अलक्षित भाव से जाग उठी !

उसने कुछ कुछ अनुभव किया, और—

और वह उठकर धीरे धीरे चली—अपना जीवन-लक्ष्य खोजने !

चंद्रदेव होठों में ही मुस्कराये !

[घ]

आज उसने फिर उदास भाव से उसकी ओर बिना देखे ही

पूछा—
"तुम कौन हो ?"
"भिखारिन—"
"यहाँ क्या करती हो ?"
"उपासना—"
"किसकी ?"
"बार-बार बतलाना होगा ?"
"हाँ– "
"प्रेम-देवता की—"
"लेकिन, उससे वरदान तो न मिलेगा ? तुम्हारी उपासना तो व्यर्थ ही है !"
वह कुछ सोचता हुआ फिर सितार बजाकर गाने लगा—
"मेरो मन, अनत कहाँ सुख पावै !"
उफ़—इतनी उपेक्षा ?
वह आहत हो गई—आँखों में उमड़ा हुआ समुद्र छिपाकर बोली—
"मैं जाऊँ ?"
उत्तर मिला—
"हाँ—"
पतझड़ की सूखी बयार डोली—पेड़ों के जर्जर पत्ते इधर उधर बिखर गये ! क्या यह उसके जीवन के पतझड़ की सूचना थी ? कौन जाने ?
उस दिन, न वह फूल चुनने आई—
और, न उसने सितार ही बजाया !

[ङ]

अब वह स्वयं एक आग थी !

उसो आग में वह जलती थी और उसी में उसे सुख था क्योंकि वह देवता की उपासना करती थी ! वह और भी अधिक गंभीर बन गई !

कोयल ने बसंत के आने की सूचना दी—पेड़ों की सूखी टहनियाँ फिर से हरी हो गईं—सरसों के हरे पेड़ों ने पीली चादर से अपना मुँह ढक लिया !

भौंरों से प्रणय-संदेश सुन सुन कर फूल और कलिकायें फूल उठीं !

बसंत ने प्रकृति को प्यार से चूम लिया !

प्रकृति में जीवन आ गया !

उसने अपनी आँखें ऊपर उठाकर प्रकृति का यह वैभव देखा—आँखों ने चुपचाप बसंती मदिरा पी ली !

शुष्क अधर अज्ञात भाव से काँप उठे !

आज बहुत दिनों बाद उसके पीले कपोलों पर उषा की लाली बिखर पड़ी !

अपने अदृश्य बंधन में फूलों का तमाम सौरभ बाँधे हुए समीर के एक मृदुल झोंके ने आकर उसके कान के पास कुछ कहा वह सिहर उठी !

[च]

आकाश में सप्तमी का चन्द्रमा हँस रहा था !

उसकी किशोर क़िरणें प्रकृति के साथ इठला रही थीं !

उत्पाती समीर को मर-मर शब्द से वृक्ष झिड़क रहे थे और चारों ओर थी अखंड नीरवता ! वह मंजरित-आम्र-तरु की छाँह में बैठकर तुम्बुरु की भाँति सितार बजाता और कोयल की तरह गाता था ! आज भी वह दार्शनिक-भाव धीरे धीरे अपने नियत स्थान पर आया—परन्तु...अरे ! यह क्या ? यह कौन है ?

रात्रि की उस घोर निर्जनता में उसका सारा शरीर कंटकित हो गया !

वह उसके पास आकर बैठ गया !

आज उसके हृदय में फिर एक आन्दोलन-सा मचा—

चंद्रमा के हल्के प्रकाश में उसने झुक कर देखा—

वह कोई करुण-स्वप्न देखकर रो रही थी !

उसके मुख पर वेदना की गहरी छाप थी !

अधर अस्फुट स्वर में कुछ कह रहे थे !

चाँदनी ने उसके पीले मुख को और भी अधिक मोहक बना दिया था !

उसने अवाक् होकर देखा—क्या ?

वह रूप-राशि !

उन्नत वक्ष-स्थल पर एक पतला वस्त्र शिथिल होकर पड़ा था !

वह गहरी नींद में सो रही थी—

वह ललचाई आँखों से उसे देखता रहा ! एकटक देखता रहा !

उसके अधर, यौवन के उस छलकते हुए प्याले को पी लेने के लिये व्याकुल हो उठे—

मरुभूमि में अमृत का स्रोत बह रहा था !

उसने सोचा—

"यह सब क्या मेरे ही लिये नहीं है ? इस अनाघ्रात कलिका को धूल में न मिलने दूँगा ! यह मुझे प्यार करती है, अब न निराश करूँगा इसे ! आह ! यह ऐश्वर्य मैं न छोड़ सकूँगा !"

पलभर के लिये वह विचलित हो उठा किन्तु तत्क्षण ही उसकी भीषण प्रतिज्ञा सजीव होकर उसके सामने आ खड़ी हुई ! उसे अपनी गुरु-दीक्षा का स्मरण हो आया ! उसे अधिकार क्या है प्रेम करने का ? उसका हृदय, ग्लानि, लज्जा और दुख से भर गया !

वह पश्चात्ताप से सिर झुकाये दूसरे वृक्ष के नीचे जाकर लेट गया !

उस समय वह गा न सका !

उसका हृदय धड़क रहा था !

कुछ सोचते ही सोचते--

उसकी आँखें अपने आप झिप गईं !

उसने--

अपनी आकांक्षाओं को कुचल दिया था !

[छः]

सहसा उसका स्वप्न-जाल बिखर गया !

वह चौंक कर उठ बैठी—

चाँदनी, कुहासे की भाँति सर्वत्र फैली थी !

उस धुँधले प्रकाश में उसने देखा—

कुछ दूर पर गायक सोया हुआ है !

जो आग अब तक सुलग रही थी, आज निशा की प्रगाढ़ निस्तब्धता में अचानक जल उठी ! वह धीरे से उठी--

उसका हृदय वेग से धड़क रहा था !

वह सब कुछ भूल गई--

इस समय वह केवल एक ही बात सोचती थी--

वह देवता से हठ करके वरदान लेने जा रही है !

मुग्धावस्था में और इससे अधिक वह कुछ न सोच सकी।

वह गायक के समीप जाकर चुपचाप बैठ गई।

कुरूप गायक उसकी आँखों में कभी भी इतना सुंदर न लगा था !

वह उसके लिये सब कुछ कर सकती थी !

गायक के होठों पर एक हल्की-सी मुस्कान थी और उसकी

मुँदी हुई आँखें किसी गूढ़ रहस्य का उद्घाटन कर रही थीं।
वह अब रुक न सकी--
आज बहुत दिनों की तड़पती हुई साध उसकी आँखों में, हृदय में, अधरों में, अचानक ही जाग उठी थी !
वह गायक के ऊपर झुक गई—
उसके प्यासे अधर—
गायक के शुष्क अधरों से मिल गये !
उफ़......उफ .....उफ़......
वह वेसुध हो गई !
कोयल, आम के पेड़ की डाली पर छिप कर गा उठी—
कुहू—कुहू !

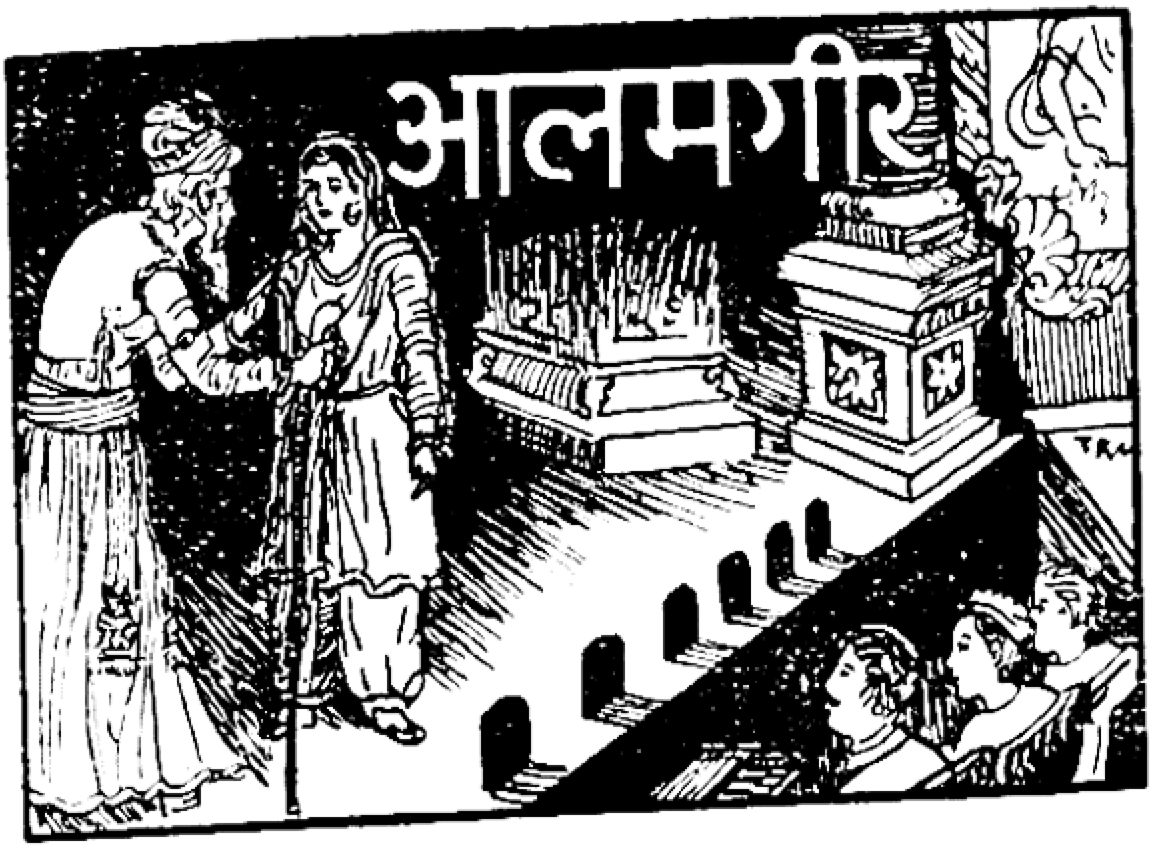
[ज]

गायक की आँखों ने—
आश्चर्य से उस भिखारिन के इस पागलपन को देखा ?
कुछ क्षण तक वह ज्ञान शून्य-सा पड़ा रहा !
वह एक सुनहला स्वप्न देख रहा था !
परन्तु—
अचानक ही उसकी कठोर प्रतिज्ञा, स्मृति बनकर उसके सामने आ गई !
वह एक तीव्र झटके से उसे अलग करके उठ खड़ा हुआ !
उसके मुँह से निकला—
"भोली बालिका ! यह क्या किया तुमने ? मैं इसका अधिकारी न था, कितनी बार समझाया मगर अंत में तुमने यही किया ? मैं तो जन्म भर रोया हूँ और रोऊँगा किन्तु तुमने नाहक़ ही अपने पथ में भी अपने हाथों, काँटे बो लिये ?"
वह अकचका कर देख रही थी उसकी तरफ़ !

उसकी समझ में कुछ न आया—
गायक क्या कह रहा था ?
क्या उसी से कुछ कह रहा था ?
वह सोचने लगी—
गायक ने क्या कहा ? उसने मुँह फेर लिया—आँखें बन्द हो गईं !
गायक ने एक बार घास पर नत-मुख पड़ी हुई बालिका की ओर करुण नेत्रों से देखा !
फिर
फिर वह निष्ठुर गायक सहज भाव से एक ओर चल दिया !
फिर वह कभी न आया !

[झ]

जब उसने आँखें खोलीं--
तो देखा, वसंत अभी सोकर उठा है !
कोयल उसे गाना सुना रही है !
और उषा, प्रकृति को सुनहले रंग से रँग रही है !
उसने, सूनी आँखों से सब कुछ देखा—
उसका संसार खो गया था !
शृंगार लुट गया था—
उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिरकर घास पर बिछी हुई ओस में मिल गये !
अब भी--
वह अपने देवता की उपासना करती है और—
और पूछने पर अपना नाम—
"तिरस्कृता" बतलाती है !



हाँ—

हम एक ही क्यारी के दो पौधे थे !

साथ साथ हँसते खेलते बचपन के सुनहले दिन और रुप-हली रातें बिताते थे ! प्रेम हमारा सहचर और भोलापन हमारा शृंगार था। उल्लास भरी शैशव की उमंगों पर कौतुक नाचा करता था !

हम लोग हवा की भाँति स्वच्छन्द, जल की तरह निर्मल और आकाश के समान अबोध थे !

इन्दिरा—हाँ, यही उसका नाम था !

मैं उसे इन्दु कहकर पुकारता था, परन्तु उसने मेरे कई नाम रख छोड़े थे। कौतूहल भरे जीवन के वे दिन धीरे-धीरे बीतने लगे। सोलह बार ऋतुओं का परिवर्तन हुआ, जाड़ा, गरमी, बर-सात, सोलह बार आये और चले गये !

पिताजी की बदली हो जाने पर मुझे उनके साथ इलाहाबाद चला आना पड़ा। मैं वहीं कालेज में पढ़ने लगा। इन्दु की बड़ी याद आती थी किन्तु विवश था। अब वह 'सयानी लड़की' कहलाती थी और मैं—

मैं कहलाता था 'नवयुवक' !
समाज के अनुदार कोष में इन दोनों शब्दों के अर्थ बड़े विलक्षण थे !
कभी कभी मैं सोचने लगता—
क्या अब मैं वह नहीं हूँ जो पहले था ?
शायद—इन्दु भी यही सोचती होगी !
समाज के भय से हम लोग पत्र-व्यवहार भी नहीं कर सकते थे !
किन्तु—
मैं इन्दु को भूल न सका—
उसके लिये नहीं कह सकता—शायद भूल गई हो !
मैं अचानक बीमार पड़ा—
बचने की आशा न रही, डाक्टरों ने परामर्श से कुछ निश्चित किया---
मुझे पढ़ना छोड़ना पड़ा !
मैं मरते मरते बच गया !
बीमारी के दिनों में, कुछ कुछ स्मरण है—शायद इन्दु अपने पिता के साथ मुझे देखने आई थी !
उसका चेहरा भी कुछ कुछ याद आता है !
हाँ, देखा था—परिवर्तन, बड़ा परिवर्तन हो गया था !
उफ़ !!

× × ×

हाँ, फिर—
तीन वर्ष बाद—
मैं सूर-विजय नाटक कम्पनी में डायरेक्टर था !
उन दिनों इस थियेटर कम्पनी की बड़ी धूम मची हुई थी। कम्पनी कलकत्ते में खेल दिखा रही थी। मेरा ही लिखा हुआ

'जगतसिंह' नामक ऐतिहासिक नाटक खेला जाने को था। साढ़े नौ बजे से खेल आरम्भ था। खेल की वह पहली रात थी! थियेटर हाल में तिल धरने की जगह न थी—दर्शकों का झुण्ड उमड़ता चला आ रहा था, उस समय ठीक आठ का घंटा बज रहा था। मैं अपने टेन्ट से निकलकर मैनेजर के आफिस की ओर चला, इतने में देखा कि वे स्वयं मेरी तरफ़ बढ़े चले आ रहे हैं, आते आते उन्होंने कहा—

"पन्तजी! बड़ा ग़ज़ब हो गया—हम लोग मिट गये?"

मैं घबरा गया—दास बाबू का चेहरा और आकृति ही उस समय कुछ विचित्र सो हो रही थी! मैंने पूछा—

"क्यों बाबूजी? बात क्या है?"

"यूसुफ़ कहीं भाग गया, अब आज प्रधान-पात्र का काम करेगा कौन? कलकत्तेवाले मार ही डालेंगे! कम्पनी को मुँह दिखाना मुश्किल हो जायगा! बोलो? क्या करूँ?"

मैंने कुछ सोचकर जवाब दिया—

"बाबूजी?"

"हाँ—"

"बड़ा कठिन मामला आ पड़ा है—"

दास बाबू मेरी ओर देख रहे थे—उनकी आँखें डबडबा आई थीं! वे मेरे पैरों पर टोपी रखकर बोले—

"पन्तजी! मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ में है—भेजो किसी और ऐक्टर को, तजवीज़ करो जिसमें किरकिरी न होने पाये?"

मुझे अचानक कैलाश का स्मरण हो आया। उसे हमारी कम्पनी में आये यद्यपि तीन ही महीने हुए थे लेकिन वह बहुतों से अच्छा था। मैं उसे बहुत चाहता था और पार्ट याद कराने में उसकी ओर विशेष ध्यान रखता था। वह मुझसे दो तीन ही साल छोटा था लेकिन इतने शीघ्र उसने उन्नति कर ली थी कि

मुझे उसकी प्रतिभा और सफलता पर आश्चर्य होता था !
वह भी मुझसे बड़ा स्नेह रखता और इसी नाते वह मुझे हमेशा "दादा" कहा करता था !
मैनेजर साहब की घबराहट देखकर मुझे चट कैलाश का स्मरण हो आया, मैंने कहा—
"बाबूजी ! आप न घबराइये, आज का प्रबंध मैं कर लूँगा, आप जाइये !"
"आप ही पर छोड़ता हूँ, भूलियेगा नहीं—"
इतना कहकर दास बाबू चले गये। मैंने कलाश को बुला भेजा। वह आकर बोला—
"क्यों दादा ! आज असमय कैसे याद किया ?"
मैंने कहा—
"यों ही –"
"कुछ तो ? सुना है—यूसुफ़ भाग गया ?"
"हाँ—"
"तब, आज का खेल कैसे होगा ?"
"यही पूछने को तुम्हें बुलाया है—"
"मुझे ?"
"हाँ हाँ—तुम्हीं को ?"
कैलाश कुछ सोचने लगा। एक बार उसे कँपकँपी सी आ गई। मैंने कहा--
"आज तुमको जगतसिंह बनना होगा—"
वह चुप था, मानों मेरे शब्द उसके कानों तक पहुँचे ही नहीं !
मैंने फिर कहा—
"कैलाश ! कुछ समझे ?"
इस बार उसकी बड़ी बड़ी आँखें मेरी ओर फिर गईं—उसने कहा—

"दादा! क्या आज्ञा देते हो?"
मैंने घड़ी की ओर देखा—ठीक साढ़े आठ बजा था, मैंने कहा—
"कैलाश! एक घंटे का समय है, पार्ट देख जाओ इतने में—
यूसुफ़ नहीं है तो न सही, आज कैलाश ही जगतसिंह बनेगा—"
वह बोला—
"दादा! मुझसे बन न पड़ेगा?"
मैंने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—
"कैलाश! आज कम्पनी की लाज तुम पर छोड़ता हूँ, मेरी बात न टालो—"
वह हँसता हुआ चला गया!
एक घंटे बाद—दर्शकों ने देखा—
बाजों की सुरीली गति के साथ साथ—
कैलाश, जगतसिंह के वेश में स्टेज पर आ रहा था!
कहना नहीं होगा कि उस रात को, कैलाश के अभिनय की सफलता ने मुझे मुग्ध कर लिया और दर्शकों ने भी उसके कार्य की बड़ी प्रशंसा की!
अब मैं कैलाश से, पहले से भी अधिक स्नेह करने लगा!
उस युवक ने मेरे जीवनप्रवाह में अपनी भविष्य-नौका निराधार छोड़ दी!
वह मुझे पुकारता था—'दादा!"
मैं उत्तर देता था—"भैय्या!"

× × ×

जबलपुर में—
एक महीने की छुट्टी के बाद कैलाश अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ लौटा। उसने मुझे पहले एक पत्र में लिखा था कि वह अपनी पत्नी को भी थियेटर कम्पनी में अभिनेत्री बनाना चाहता है किन्तु उसका अभिनय अपने साथ ही रखेगा, पृथक नहीं। मैं

अपनी स्वीकृति दे दी और मैनेजर से भी कह सुन दिया।

शाम को—

कैलाश ने मुझे अपने यहाँ भोजन करने को आमंत्रित किया—

ठीक समय पर—

मैं पता पूछता हुआ ग्रेन्ड होटल के २७ नम्बर वाले कमरे के द्वार पर खड़ा था। कैलाश मुझे भीतर ले गया। उसकी पत्नी मुझे आते देखकर लज्जा से उठ खड़ी हुई और उसने सिर झुका कर मुझे प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर मैंने अपनी आँखें उधर उठाईं। वह भी मेरी ओर देख रही थी! अरे!

मैं अचानक कह उठा—

"अयँ इन्दु?"

कैलाश हतबुद्धि सा खड़ा देखता रहा। उसकी समझ में कुछ न आया।

मैंने फिर कहा—

"इन्दु?"

उसने मेरी ओर देखकर सिर नीचा कर लिया। मैं अपने हृदय के भावों को व्यक्त नहीं कर सकता था!

उफ़—घटनाचक्र! अब?

भोजन करके मैं जल्दी ही वहाँ से लौट पड़ा। उस रात को मुझे नींद नहीं आई। हाँ, रात भर जाग कर, मैंने कुछ निर्णय कर डाला और वह मेरे हृदय की बात थी!

सवेरे कैलाश से मिला, कोई नई बात न थी! मैंने स्वयं ही कैलाश से कह दिया कि मैं बचपन से इन्दु और उसके परिवार के लोगों से परिचित रहा हूँ।

फिर दूसरे दिन से—

इन्दु भी अभिनय सीखने के लिये थियेटर में आने लगी!

मैं—हाँ मैं ही— उस दिन से उसका भी "दादा" बन गया!

मेरा स्नेह कैलाश के प्रति दिन दिन बढ़ता जा रहा था !
इन्दु बड़े चाव से काम सीखने लगी। कभी कभी मैं सोचता—
पहले हम लोग क्या थे ? अब क्या हो गये हैं ?
अब तो इन्दु मेरी छोटी बहिन थी और मैं उसका बड़ा भाई !
दिन यों ही बीतने लगे—हमारा छोटा सा संसार बड़ा सुहावना था !
दशहरे के अवसर पर हम लोग कानपुर पहुँचे। कम्पनी का बोलबाला था। इन्दु के स्टेज पर आने की पहिली रात थी !
शहर में जगह जगह पर लोग पोस्टर पढ़ रहे थे—
नाटक का नाम था—देवयानी !
कैलाश करेगा "कच" का अभिनय और इन्दु बनेगी "देवयानी।"
रात को—
तमाशा हुआ, कैलाश और इन्दु दोनों ने कमाल कर दिया !
उनका अभिनय इतना अच्छा और स्वाभाविक था कि लोग तारीफ़ों के पुल बाँध रहे थे !
कानपुर में यह खेल लगातार तीन महीने खेला गया। कम्पनी मालामाल हो गई। इन्दु और कैलाश का वेतन बढ़ गया ?
दम्पति की सफलता पर मुझे गर्व था। उनकी उन्नति में मैं अपनी उन्नति समझने लगा था। अब प्रायः प्रत्येक नाटक में प्रधान पात्र और पात्री कैलाश और इन्दु ही हुआ करते। कैलाश और इन्दिरा का नाम प्रत्येक शहर में बच्चे बच्चे की ज़बान पर हो गया। कम्पनी वाले ख़ूब धड़ल्ले से विज्ञापन करते और दोनों हाथों रुपया समेटते !
लेकिन—
कैलाश और इन्दु की यह उन्नति कम्पनी के दूसरे

अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को असह्य हो उठी !

षड़यंत्र रचे जाने लगे। सब ऐक्टर इसी ताक में रहते कि इन दोनों को किस प्रकार नीचा दिखाया जाय !

मगर, किसी की चलती एक न थी—कम्पनी का मैनेजर कैलाश और इन्दिरा पर जान दिये फिरता था। क्रमशः पाँच महीने बीत गये। मैं इन दोनों को बचाने का जितना ही प्रयत्न करता था उतना ही ये अभिनेताओं की आँखों में खटकते जाते थे ! कुछ दिनों तक घूमती फिरती—

हमारी कम्पनी लखनऊ पहुँची !

× × ×

उस दिन शनिवार था—

दिन में ही सारी सीटें रिज़र्व हो चुकी थीं !

रात को—टिकट बन्द !

हाल में जगह ही नहीं, सैकड़ों दर्शक वापस होने लगे !

कोई इलाज नहीं—कम्पनी का बड़ा नाम था !

ठीक समय पर खेल आरम्भ हुआ—

तपोवन की शकुन्तला—हाँ, इन्दिरा ही तो—वास्तव में जीती जागती शकुन्तला बन कर स्टेज पर आ गई !

दर्शकों में बार बार करतल-ध्वनि हुई !

उसके अभिनय और गानों ने ऑडियेन्स को मुग्ध कर लिया !

सारा लखनऊ उस पर हज़ार जान से न्योछावर था !

कैलाश दुष्यन्त का अभिनय बड़ी ख़ूबी के साथ निभा रहा था—

थोड़ी देर बाद—

दुष्यन्त और शकुन्तला एक दूसरे से बिदा हो रहे थे—

देखते देखते पहिले अंक की समाप्ति पर ड्राप गिरने लगा—

परन्तु यह क्या ?

अचानक ड्राप का भारी लट्ठा पीछे हटते हुए 'दुष्यन्त' पर पूरे

ज़ोर से आ गिरा !

रस्सी टूट गई थी शायद !

कैलाश जहाँ का तहाँ गिर गया—भरपूर चोट लगी थी पीठ पर !

इन्दु के मुँह से एक हल्की सी चीख़ निकल गई !

मैं आरकेस्ट्रा में बैठा, अभिनय देखने में तल्लीन था, दुर्घटना होते ही तुरन्त उठकर स्टेज पर पहुँचा। बड़ी भीड़ लगी थी !

मैं सब समझ गया—

षड्यंत्र सफल हो गया था !

मैंने ड्राप के लट्ठे से बँधी हुई रस्सी का छोर देखा—

जैसे सिगरेट की आग से धीरे धीरे जलाया गया हो !

निशान साफ़ मालूम होता था !

कम्पनी के अभिनेताओं की इस हरकत पर मुझे रह-रहकर क्रोध आता था ! कैलाश को होश में लाने की सब कोशिशें बेकार हुई ! डाक्टर ने परीक्षा करके बतलाया कि चोट भीतरी लगी है, गिरने से पीठ की हड्डी टूट गई है ! उसने तुरन्त ही कैलाश को अस्पताल ले जाने की सलाह दी। मैंने चटपट मोटर मँगाई। इन्दु फूट-फूटकर रो रही थी। मैंने दो आदमियों की सहायता से कैलाश को मोटर पर लिटा दिया और चलने को हुआ—

इन्दु ने आगे बढ़कर मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और सिसकती हुई बोली—

"दादा ! अब क्या होगा ?"

मैंने कहा—

"घबराओ मत, कैलाश की तबियत अभी ठीक होती है !"

उस रात को—

मैनेजर ने दर्शकों से विलम्ब के लिये क्षमा माँगते हुए दुर्घटना का उल्लेख करके जैसे तैसे खेल पूरा किया !

× × ×

दो महीने—

हाँ, दो महीने तक कलाश की बीमारी में हमारे दिन और रात बड़ी चिन्ता में बीते। कम्पनीवालों ने बड़ी नाराज़ी और कहा सुनी के बाद दो महीने की छुट्टी मंज़ूर की थी। कैलाश अब उठ बैठ सकता था, स्वस्थ हो चला था लेकिन उसकी पीठ की हड्डी न जुड़ सकी थी!

बड़े बड़े सिविल सर्जन और विशेषज्ञ डाक्टरों ने अपने प्रयत्न में असफलता पाई!

अन्त में, हम लोग भाग्य को दोष देते हुए पुनः कम्पनी में लौट आये।

कम्पनो के मैनेजर ने कैलाश को देखते ही कहा—

"अब ये तो बेकार हो गये, इनसे हमारा क्या काम निकलेगा—"

कुबड़े अभिनेता को व्यवसायी कम्पनी वाले क्यों वेतन देकर रखने लगे! उस दिन—

मैनेजर की बात सुनकर इन्दु की आँखों में आँसू आ गये। उसका सारा संचित धन, ज़ेवर और मेरी भी थोड़ी बहुत जमा पूँजी, सब कुछ कैलाश के दवा इलाज में स्वाहा हो चुकी थी! अब जीविका के रहे सहे साधन पर भी कुठाराघात होते देख कर इन्दु की आशा का बाँध टूट गया। वह रोती हुई बोली—

"दादा!"

कितनी करुणा, कितनी निराशा, कितनी व्याकुलता थी उसके अशान्त स्वर में!

उस दिन—

हाँ, उसी दिन मैं हृदय से रो पड़ा, मैंने कहा—

"क्यों इन्दु! क्या है?"

वह बोली—

"यहाँ से तो अन्न-जल छूटा ही समझना चाहिये ?"

मैं कुछ उत्तर न दे सका। मुझमें इतना साहस न था। वास्तव में कैलाश के बिना इन्दु कम्पनी में कैसे नौकरी कर सकती थी !

इन्दु मेरी ओर देख रही थी—

मैं चौंक पड़ा—क्यों ?

देखा—इन्दु के आँसू रुके न थे ! अभी तक रुके न थे !

शाम होते होते मैनेजर ने मेरे पास एक चिट्ठी भेजी—लिखा था कि—

कैलाश को कम्पनी से अलग किया जाता है उसे सूचना दे दीजिये कि शुक्रवार को वह चला जाये। इन्दिरा यदि चाहे तो कम्पनी उसे ड्योढ़े वेतन पर रखने को तैयार है।

मैंने पत्र पढ़ा—कई बार पढ़ा—मुझे कम्पनी के मैनेजर, दास बाबू के इस व्यवसायीपन और स्वार्थपरता पर बड़ा क्रोध आ रहा था !

किन्तु—मेरी बिसात क्या ?

कुछ ज़्यादा कहने सुनने पर मुझे भी अपनी रोज़ी से हाथ धोना पड़ता !

उस दिन बुधवार था—

सवेरे जब मैं इन्दु के कमरे में चाय पीने गया तब मैनेजर का पत्र उसे दे दिया। कैलाश एक आराम कुर्सी पर लेटा था, वह बोला—

"क्या है दादा ?"

मेरे उत्तर देने के पहले ही इन्दु बोल उठी—

"क़िस्मत का फ़ैसला—"

कैलाश चुप होगया। मैं चाय पीकर चलने लगा। इन्दु की आँखें डबडबा आईं। उसने मेरी नज़र बचा कर आँचल से पोंछना चाहा—वे आँसू !

उफ़ ! मैं दरवाजे की ओर चला था कि इतने में इन्दु दौड़ कर मेरे सामने आकर खड़ी हो गई और बोली—

"दादा ?"

मैंने कहा—"

"क्यों ?"

चौंक कर उसने अपना सिर नीचा कर लिया और कहा—

"कुछ नहीं—"

वह कुछ कहना चाहती थी परन्तु न कह सकी—वह लौट गई। वहाँ से घर वापस आकर मैं अपने कमरे में बैठकर सोचने लगा—बड़ी अशान्ति थी—थोड़ी देर इधर उधर उठकर टहलता रहा—फिर—फिर एक बात सूझ गई !

× × ×

लेम्प का प्रकाश कुछ धीमा पड़ गया—

टाइमपीस की ओर देखा, साढ़े तीन बजे थे !

मैंने काग़ज़ का दूसरा शीट खींचते हुए उस पर ११७ नम्बर डाला।

थोड़ा सा लिखना और शेष था !

देह टूट रही थी, आँखें झिपी जाती थीं, मैंने अपने इधर उधर देखा—चारों तरफ़ लिखे हुए काग़ज़ बिखरे पड़े थे ! मुझे अपनी कृति पर आश्चर्य हो रहा था—सचमुच एक ही बार में बैठकर इतना तो मैंने पहिले कभी न लिखा था !

हृदय में थोड़ा साहस आया, मैं फिर लिखने में तन्मय हो गया। घंटाघर में ६ बजने के साथ ही साथ प्रकाश की पहली किरण ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। मैंने लिखना समाप्त कर दिया। वे बिखरे हुए काग़ज़ आज मुझे बड़े प्यारे लग रहे थे। उन्हें एक एक कर इकट्ठा किया और एक फ़ाइल में रखा। फिर फ़ाइल लेकर मैं बाहर निकल आया—दास बाबू के कमरे में पहुँचा—

वे जग चुके थे। मुझे असमय आते देखकर बोले—

"आज इतने सवेरे सवेरे कैसे ?"

"आपसे एक विशेष काम था—"

मैंने अपने हाथ की फ़ाइल खोलकर उनके सामने रख दी। उलट पुलटकर दास बाबू ने उसके पृष्ठों पर नज़र डाली फिर बोले—

"अयँ, यह लिखा कब ?"

"अभी—रात में—"

"नई चीज़ है, क्यों न ? भई, लखनऊ और दिल्ली में तो ख़ूब ही चलेगा !"

मैं चुप था, दास बाबू ने मेरी ओर देखकर कहा—

"पन्तजी !"

"जी—"

"प्रधान-पात्र का काम किसे दोगे ?"

बुड्ढे आलमगीर (औरंगज़ेब) का पार्ट करने के लिये ऐक्टर को लाठी टेक-टेककर बड़ी होशियारी से चलना और काम करना होगा !

अवसर था—

मैंने कहा—

"कैलाश !"

"कैलाश ? मगर उसको तो जवाब हो गया कम्पनी से ? वह चला गया होगा और—इन्दिरा ?" मैंने कहा—

"आज ही तो शुक्रवार है !"

दास बाबू ने एक स्लिप लिखकर मेरे आगे बढ़ाते हुए कहा—

"अरे देखो पन्तजी ! उन दोनों को जाने न देना, अपनी फ़ाइल यहीं रहने दो, मैं ज़रा सोच लूँ—"

× × ×

एक महीने बाद—

हमारी कम्पनी दिल्ली पहुँची –
मेरा नया नाटक तैयार हो चुका था !
दिल्ली की जनता ने चारों ओर पोस्टरों और विज्ञापनों में पढ़ा—

> **दी सूर-विजय नाटक समाज**
>
> स्थान—एडवर्ड पार्क
>
> रात को ६॥ बजे **आलमगीर** रात को ६॥ बजे
>
> ३ मनोहर अंकों में
>
> आलमगीर — मास्टर कैलाश
>
> गुलनार — मि० इन्दिरा

उसी रात को—
स्टेज पर—पीछे की तरफ़—
मेरी बाईं ओर लाठी टेकता हुआ "आलमगीर" और दाहिनी ओर "गुलनार"—दोनों खड़े मुस्करा रहे थे !
जनता, आशा से अधिक संख्या में इस नये उर्दू ड्रामे के नाम से ही उमड़ती चली आ रही थी !
दास बाबू प्रसन्नता से फूले फूले इधर उधर इन्तज़ाम में दौड़ रहे थे !
कैलाश और इन्दु ने एक ही साथ मेरी ओर देखा—
कैलाश ने कहा—
"दादा ?"
मैंने कहा—
"हाँ—"
इन्दु ने भी कहा—

"दादा !"
मैंने उत्तर दिया—
"हाँ—"
शायद—
मेरे जीवन का सबसे सुन्दर दिन वही था !



आज—

जीवन की वे आशा भरी घड़ियाँ याद आती हैं जब भविष्य की तमाम चिन्ताओं से मुक्त, शैशव की गोद में आनन्दपूर्वक दिन बीतते थे। माता का अनमोल प्यार, भाई बहिनों का दुलार, घाटियों की सैर, पहाड़ियों पर की उछल-कूद, गुड़ियों के खेल, फूलों का शृंगार, सब कुछ अच्छा लगता था !

कहाँ तक कहूँ—वे दिन भी कैसे सुन्दर थे !

खाना और खेलना ही जीवन का उद्देश्य सा बन गया था उन दिनों !

याद आती है तो हृदय में ऐसी मीठी वेदना होती है कि कुछ समय के लिये मैं उस पीड़ा में आनन्द विभोर हो उठती हूँ।

मैं नहीं समझ सकी कि कब और कैसे बर्तमान अतीत और भविष्य वर्तमान बनता चला आया !

और प्रत्येक परिस्थिति कैसे जीवन के लिये स्वाभाविक बनती चली गई !

हाँ, मैं साश्चर्य सोचती हूँ—
खेल ही खेल में एक दिन मैंने शैशव को बिदाई देकर यौवन से नाता जोड़ लिया। आँखों में बसन्ती नशा छा गया, और पलकें लज्जा के भार से अचानक झुकने लगीं!
यह परिवर्तन!
परन्तु मैं समझ न सकी?
निर्धन होते हुए भी हम लोगों का जीवन शान्तिपूर्वक बीतता था, किन्तु इधर मैं कुछ दिनों से अपनी माँ को किसी घोर चिन्ता में पड़ी देखा करती थी। वे किसी गहरे विचार में प्रतिक्षण लीन रहतीं। कभी गाँव के मुखिया के पास जातीं, कभी किसी पड़ोसी के यहाँ। फिर, लौटने पर, उनकी गम्भीर मुखाकृति और आँखों में आँसू देखकर मैं मन ही मन उनकी हृदय की बात जानने के लिये चिन्तित हो जाती। यदि कभी उनसे पूछती भी तो कोई उत्तर न मिलता या वे झिड़ककर मुझसे कह देतीं—
"तुझे क्या करना है?"
अन्त में एक दिन, मुझे मालूम हो गया कि माँ की चिन्ता का कारण है मेरी विवाह-समस्या!
विवाह?
हाँ, मैंने इस शब्द को बार बार रटा और उस दिन भविष्य का एक बहुत सुन्दर-सा चित्र मेरी आँखों में फिर गया!
उस अदृश्य व्यक्ति के प्रति, जिसका कहीं नामोनिशान तक न था, मेरा हृदय श्रद्धा और प्रेम से ओतप्रोत हो गया!
'विवाह' शब्द मैंने कितनी ही बार, कितने ही अवसरों पर सुना था लेकिन इतना महत्वपूर्ण वह पहिले कभी न लगा था जितना उस दिन अपने विषय में सुनकर!
परन्तु—
मेरे विवाह में हमारे परिवार की धनहीनता ही सबसे बड़ी

अड़चन थी !

सब जगह से निराश होकर माँ अब ईश्वर के भरोसे चुप होकर बैठ गई ।

जिस समय—

वे मुझे देखकर एक गहरी साँस लेतीं तो मैं संकोच और लाज से कट जाती लेकिन मेरा वश क्या !

कुछ दिनों से 'विवाह'-कल्पना से मुझे बड़ा आनन्द आने लगा था ।

मैं अपने भविष्य का सुनहला चित्र देखती थी—जाने क्यों ?

मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास था कि मेरे स्वप्न एक न एक दिन अवश्य ही सत्य हो जायँगे ! क्या कहूँ—वे स्वप्न कैसे मधुर थे !

मैं बहुत ही सुन्दर थी—अपनी अपूर्व सुन्दरता पर मुझे गर्व था ! ईश्वर के इस अमूल्य वरदान के प्रति मेरे मन में असीम स्नेह था !

कह नहीं सकती, मैं अब भी रूपवती हूँ या नहीं क्योंकि अब मैं किसी वस्तु को परखने में असमर्थ हूँ !

किन्तु समाज ?

हाँ, समाज ने ही रूप, गुण की क़द्र न करके रुपये को ही अधिक मूल्यवान समझा !

इसे मैं अपने दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहूँ !

कुछ दिनों के बाद—

एक दिन गाँव के वृद्ध पुरोहित तीन चार सम्भ्रान्त व्यक्तियों को साथ लेकर मेरे घर आये । मैं सयानी लड़की थी, अतः शीघ्रता से भीतर चली गई । परदे की आड़ से मैं देखती रही—

माँ और पुरोहितजी में जाने क्या धीरे धीरे बातें होती रहीं !

उन लोगों के चले जाने पर—

जब रुपयों से भरी हुई दो थैलियाँ माँ बक्स में रखने के लिये

साई तब मेरे आश्चर्य की सीमा न रही ! उस समय माँ कैसी प्रसन्न थीं !

हाय री दरिद्रता !

मेरे हृदय में एक भीषण द्वन्द मच रहा था। यद्यपि ये सब कार्य बहुत ही गुप्त हुए थे परन्तु परिस्थिति बहुत कुछ मेरी समझ में आ गई थी !

मेरे मन में एक आशंका उठी—जिसके सत्य-असत्य का निर्णय बाद में हुआ !

(२)

याद है, वह दिन भी—

जो मेरे जीवन का एक शुभ-मुहूर्त्त था !

द्वार पर शहनाई बज रही थी और मण्डप के नीचे हम दोनों व्यक्ति अग्नि को साक्षी करके प्रतिज्ञा-बद्ध हो रहे थे !

जब महीन चादर के घूँघट से मैंने उस सजीव आराध्य-प्रतिमा के दर्शन किये तो मेरा जीवन कृतकृत्य हो गया !

वे बहुत सुन्दर युवक हैं—इससे अधिक मैं दीपक के प्रकाश में और कुछ न देख सकी। मेरे हृदय में अपार हर्ष उमड़ रहा था !

ब्याह के दूसरे दिन—

रात भर जागने के कारण मेरी आँख लग गई। कुछ ही देर बाद माँ के आर्त-क्रन्दन का स्वर सहसा मेरे कानों में पहुँचा। मैं चौंक कर उठ बैठी। किसी अमंगल की आशंका से मेरा हृदय वेग से धड़क रहा था। मैंने चिक से देखा कि सब लोग आँगन में चुपचाप जाने क्या बातें कर रहे हैं और माँ सिसक सिसक कर रो रही हैं। माँ रोते ही रोते जो जो शब्द कह रही थीं

उनसे मुझे पता चला कि मेरे आराध्य-देव नेत्रहीन हैं। खैर, वे सकुशल तो हैं !

बस, इससे अधिक, उस समय मैं कुछ न चाहती थी !

मैंने चिक के पास से लौटकर पुनः चारपाई की शरण ली। कुछ देर तक निस्तब्ध बैठे रहने के बाद अपने आप ही मुँह से निकला—

"वे नेत्रहीन हैं, सचमुच ही नेत्रहीन हैं क्या ?"

किन्तु इसका मुझे रत्ती भर भी विश्वास न होता था !

वे आँखें जिन्हें मैंने अभी रात ही को एक अलौकिक आभा से उद्दीप्त देखा था, क्या वे ज्योतिहीन हो सकती हैं ?

कितनी सुन्दर आँखें थीं वे !

मेरी ओर ही तो बार बार वे देख रहे थे—अभी रात ही की तो बात है ? कुछ युग तो बीत नहीं गये जो मैं धोखा खा जाऊँ ? अवश्य ही सब लोग किसी के बहकाने में आ गये हैं ! कहीं ऐसा हो सकता है ?

लेकिन.........

यदि वे सचमुच ही अन्धे हैं—

तब—तब—वे कुछ न देख पाते होंगे ?

मुझे भी—मेरी इस असीम सुन्दरता को भी न देख सकेंगे ?

हाय ! विधाता ! तुमने उनके साथ ऐसा भीषण खेल क्यों खेला ?

मेरी दृष्टि उन्हें क्यों न दी, या मुझे भी दृष्टिहीन क्यों न किया ?

यही सब सोचते सोचते मेरी आँखों में आँसुओं का समुद्र उमड़ पड़ा। मैं दोनों हाथों से मुँह ढँक कर पड़ी रही। विचारों की आँधी चल रही थी !

सहसा—

मैंने स्पष्ट देखा—आँखों पर पट्टी बाँधे हुए एक उज्ज्वल देवी-

प्रतिमा मेरी ओर आ रही है ! निकट आने पर मैंने पहिचाना-
वे देवी गान्धारी हैं !
मेरे सिर पर हाथ रखकर उन्होंने धीरे धीरे कहा—
"देखो ! मुझे देखो और मेरा आदर्श लो !"
मैंने आँखें खोल कर देखा—सन्ध्या हो गई थी !
घर के आँगन में अब भी उसी विषय पर गम्भीर आलोचनायें चल रही थीं—
परन्तु—
मेरे हृदय में शान्ति थी !
उस स्वप्न ने मेरे जीवन के अँधेरे पथ को ज्योतिर्मय कर दिया था !

(३)

और भी याद है—
जब, माँ मुझे आजन्म ससुराल न भेजने का दृढ़ संकल्प कर चुकी थीं—
उस समय मैंने—
सारी लज्जा, सब संकोच, त्याग कर माँ से ससुराल भेज देने का कितने विनीत शब्दों में आग्रह किया था ! और—
इसी बात को लेकर न्योते में आये हुए सब स्त्री-पुरुष-समाज ने "बेशर्म, ढीठ" आदि जाने कैसी उपाधियों से मुझे लांछित किया था !
किन्तु सबका व्यंग, भर्त्सना और उपेक्षा को सिर माथे लेकर मैं अपने हठ से पतिदेव के साथ चली गई !
और तब—
उस दिन मैंने अपने जीवन को सार्थक समझा ।

मेरी आँखों में—
उस दिन वाला वही स्वर्गीय-स्वप्न-सन्देश था—
और हृदय में—
अखंड-सेवा-व्रत !

(४)

पतिदेव जितने सुन्दर थे उससे कहीं अधिक उनका हृदय सुन्दर था ! वे कुछ न देखते हुए भी सब कुछ देखते थे। उनमें अद्भुत अनुभव-शक्ति थी। उनकी आँखें ऐसी मोहक थीं कि सहसा देख कर कोई न कह सकता था कि ये आँखें ज्योतिहीन हैं ! उनके सौम्य मुखमंडल पर एक विलक्षण तेज था !

मुझे उनकी दृष्टिहीनता का रत्ती भर भी दुख न था। मैं रात दिन उनके ही पास बैठी रहती। मुझे उनके सामीप्य से अपार सुख मिलता था !

धन की कमी न थी, विशाल भवन, नौकर-चाकर, सुख के सभी साधन पर्याप्त थे। मैं एक रानी की भाँति राज्य करती थी। सब लोग मुझसे सन्तुष्ट थे और सबसे अधिक मैं सन्तुष्ट थी !

पतिदेव मुझे बहुत प्यार करते थे—
कभी कभी वे बहुत व्याकुल होकर कहने लगते—
"मीना ! मुझ अन्धे के लिये तुमने अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर डाला ? मुझे, सच पूछो तो, शादी करने का अधिकार ही क्या था !"
मैं उन्हें शीघ्रता से ऐसी बातें करने से रोक देती—
और तब—
तब वे प्यार से मुझे चूम लेते !
मैं उनसे रूठकर फिर कभी ऐसी बातें न करने की शपथ ले

लेती तो वे एक अबोध शिशु की तरह जसा मैं कहती वैसी प्रतिज्ञा कर लेते—

फिर—फिर हम दोनों में सुलह हो जाती!

जीवन के पृष्ठ उलट रही हूँ—

फिर क्या हुआ?

सन्ध्या को एक दिन—

मैं उन्हें अखबार की ताजी खबरें सुना रही थी पढ़कर। सहसा, उन्होंने मेरे हाथ से अखबार छीनकर दूर फेंक दिया फिर मुझे अत्यन्त निकट खींचकर बड़े प्यार से बोले—

"मीना! मैंने सुना है, तुम बहुत सुन्दर हो! हाय! एक क्षण के लिये यदि मेरी आँखों में ज्योति आ जाती तो एक नजर में तुम्हें देख लेता! मीना! तुम्हारी बाँहें, तुम्हारे हाथ कितने कोमल हैं! क्या ये बहुत गोरे भी हैं? तुम्हारे गालों का रंग क्या बहुत गुलाबी है? लोग कहते हैं, तुम्हारी आँखें बहुत बड़ी हैं, नशीली हैं? बोलो मीना! सच कहो, तुम कैसी हो?"

वे एक उन्मत्त की भाँति, मेरी आँखों को, गालों को, केशों को, पर्श करने लगते और उनकी अश्रुधारा मेरे आँचल को भिगो देती!

उनकी इस दशा को देखकर मुझे रोना आता था!

इसी भाँति फिर एक दिन कहने लगे—

"तुम्हें तो बड़ी शर्म लगती होगी क्यों मीना? जब लोग कहते होंगे कि इसका पति अन्धा है! लेकिन मीना! सच कहता हूँ मैं तुम्हें इतना अधिक चाहने लगा हूँ कि एक क्षण के लिये भी यदि तुम कहीं चली जाओ तो शायद मैं जीवित ही न रह सकूँ! क्या तुम मेरे प्रेम पर इतना ही विश्वास करती हो?"

मैंने बड़ी उमंग से कहा—

"तुम कैसी बातें करते हो? मैं तो हर समय यही सोचती हूँ कि

जितना प्रेम तुम मुझसे आँखें न होते हुए करते हो, सम्भव है कि आँखोंवाले होकर तुम मुझे उतना प्यार कभी न दे सकते ! मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व है प्रियतम !"

मेरे शब्दों को सुनकर उन्होंने एक गहरी साँस ली—

बड़े सन्तोष से उनका चेहरा खिल उठा—

वे कितने प्रसन्न थे इस समय !

कितने ही ऐसे मधुर-प्रसंग आये और बीत गये !

जो क्षण-क्षण याद आकर रुलाने के लिये पर्याप्त हैं !

(५)

तीन वर्ष पलक मारते बीत गये !

एक दिन शाम को जब मैं मन्दिर से आरती देखकर लौटी तो देखा कि वृद्ध सेक्रेटरी, जो हमारी रियासत के कर्ता-धर्ता थे, बाहर ही बैठे थे। मुझे देखते ही शीघ्रता से उठ खड़े हुए, मानो अब तक मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हों ! मैंने उन्हें अपनी ओर आते देखा तो रुक गई। उन्होंने पास आकर शीघ्रता से कहा—

"रानी बहू ! मालूम पड़ता है अब हम लोगों के अच्छे दिन आ गये हैं। आज एक बड़ी अच्छी ख़बर सुनकर आ रहा हूँ। ख़बर क्या, दैवी-वरदान ही समझो—"

उन्हीं से मुझे मालूम हुआ कि जर्मनी से एक बहुत ही विख्यात डाक्टर बनारस आये हुए हैं जो केवल आँखों का ही इलाज करते हैं और इसी चिकित्सा के वे माने हुए विशेषज्ञ हैं !

उफ़ ! इस समाचार ने मुझे हर्ष से पागल बना दिया !

मैंने उसी समय सेक्रेटरी के पैर छूकर प्रार्थना की कि वे अभी बनारस जाकर अपने साथ डाक्टर को ले आयें !

मैंने उनसे कहा—

"रुपये पैसे का आप जरा भी ख्याल न करें। मैं उनकी आँखों के लिये यदि समस्त विश्व का राज्य भी मेरे हाथ में हो तो वह भी सहर्ष दे सकती हूँ?"

मैंने बार बार सेक्रेटरी से जाने के लिये कहा—

क्योंकि मुझे भय था कि डाक्टर, विलम्ब होने से कहीं दूसरे स्थान की यात्रा न कर जायें! दूसरे दिन जाना तय करके सेक्रेटरी साहब कुछ सोचते हुए घर चले गये।

रात हो गई थी—बिना कपड़े बदले ही मैं दौड़ती हुई उनके कमरे में पहुँची। आह! जब यह सूचना मैंने उन्हें दी तो उनका मुख एक अपूर्व उल्लास से उद्दीप्त हो उठा! उन्होंने हर्ष से विह्वल होकर कहा—

"सचमुच मीना! क्या यह सम्भव हो सकता है? नहीं, मुझे तो विश्वास नहीं होता? सच कहता हूँ, विश्व की तमाम अद्‌भुत वस्तुओं को देखने की मेरी इतनी इच्छा नहीं है जितनी एक बार तुम्हारे दर्शन कर सकने की! मीना! वे डाक्टर कब तक यहाँ आ जायेंगे? आह! यदि वे मेरी आँखें मुझे दे सकें तो—तो कितना अच्छा होगा!"

वे रात भर इसी प्रकार की बहुत सी बातें करते रहे!

कभी कभी तो मुझे भ्रम हो जाता मानों उनमें वास्तव ही देखने की शक्ति आ गई हो!

हम दोनों ही उस रात को नहीं सोये—आँख ही नहीं लग सकी!

वे कितने प्रसन्न थे—क्या बताऊँ?

उनकी प्रसन्नता देखकर मेरा हृदय उत्साह से भर जाता था!

वे मधुर संस्मरण क्या भूल जाने की वस्तु हैं?

(६)

तीसरे दिन डाक्टर आ ही तो गये—

मेरे हर्ष का ठिकाना न था। सेक्रेटरी ने आकर धीरे से मुझसे कहा—

"सोच लो बहूरानी ! फ़ीस बहुत अधिक है ? भला—"

उन्हें बीच में ही रोककर मैं बोली—

"कोई चिन्ता नहीं है दादा ! तुम्हीं सोचो, आँखों से बढ़कर क्या रुपये की क़ीमत है ?"

वे चुप हो गये—लेकिन—

उफ़ ! जब दूसरे दिन परीक्षा करके डाक्टर ने बतलाया कि जन्मांधों का इलाज तो बहुत ही कष्ट-साध्य है, तो मेरा हृदय तड़प उठा। वे कितनी व्यग्रता से डाक्टर से कह रहे थे—

"तो क्या मैं कभी कुछ न देख सकूँगा डाक्टर ? सच कहिये, क्या बिल्कुल असंभव ही है ?"

कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं !

मेरे लिये यह असह्य हो उठा—

डाक्टर ने तुरन्त ही कहा—

"नहीं यह बात नहीं है मिस्टर शर्मा ! कि जन्मांधों का इलाज होता ही न हो। मैंने कई रोगियों को जो जन्मांध थे, अच्छा किया है। परन्तु बड़ी अड़चन तो यह है—"

मैंने उत्सुक होकर कहा—

"कहिये न, वह कैसी अड़चन है ?"

डाक्टर ने हिचकते हुये कहा—

"यही कि इस प्रयोग में दो अन्य नीरोग आँखों की आवश्यकता है !"

पतिदेव ने ठण्ढी साँस लेकर हताश स्वर में कहा—

"यह कैसे सम्भव हो सकता है ?"

कुछ देर के लिये कमरे में सन्नाटा छा गया। सेक्रेटरी, डाक्टर

को साथ लेकर बाहर चले गये। मैंने कुछ क्षण तक उन्हें देखा। उसके बाद कुछ निश्चय करके वहाँ से चली आई।

उसी शाम को--

सेक्रेटरी ने मुझसे पूछा—

"डाक्टर को फ़ीस देकर बिदा कर दूँ न ?"

मैंने अपने को दृढ़ करते हुए कहा—

"नहीं दादाजी ! आप डाक्टर से जाकर कहिये कि वे इलाज की तैयारी करें और मेरी आँखें उपयोग में लायें !"

सेक्रेटरी यह सुनकर अवाक् रह गये !

बहुत ऊँच नीच समझाया, रोये धोये, परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रही। घर से बाहर तक एक हलचल सी मच गई ! नौकर चाकर आश्चर्य चकित से रह गये ! लेकिन शीघ्र ही मैंने सबको समझाकर रोक दिया कि यह समाचार उनके कानों तक न पहुँचे !

बूढ़ी महराजिन मुझे बड़ा प्यार करती थी, दौड़ी हुई आई और बड़े रोषपूर्ण स्वर में कहने लगी—

"ऐ बहू ! तुम्हें यह क्या सूझा है ? भला कलयुग में कहीं ऐसी बातों से काम चलता है ? अपनी ज़िन्दगी तो बरबाद न करो—आँख बड़ी नियामत हुआ करती है ! कुछ तो सोचो बहू ?"

अन्य लोगों ने भी वृद्धा की बात का समर्थन किया। सभी कौतूहल पूर्ण नेत्रों से मुझे देख रहे थे ! मैंने सबके प्रेम-पूर्ण उपदेश सुने और केवल मुस्कराकर रह गई ! उनकी बातों में मुझे एक विशेष आनन्द मिल रहा था।

हाँ, हृदय में कुछ कुछ गर्व का अनुभव भी होता था !

मैं सोचती, मानों मेरा यही कार्य सबसे सुन्दर है !

सर्व-साधारण इससे शिक्षा लेंगे—यह इतिहास की एक वस्तु होगी !

डाक्टर ने पहले तो बड़ी आनाकानी की फिर बाद को सहमत हो गये !!

(७)

हाँ—

उस दिन मेरे जीवन का सबसे सुन्दर सबेरा था !

उषा ने सुनहले प्याले में ढालकर चेतना की मदिरा पिलाकर विश्व को जगा दिया था। मेरे हरे भरे बग़ीचे में आज दूनी हरियाली थी !

सारी प्रकृति मानों किसी नये समारोह के लिये अपना साज सज रही थी !

मैंने बड़े चाव से देखा—कैसी सजीवता थी !

पतिदेव अभी सो रहे थे—मैं चुपचाप उठकर बाहर आई। मेरी दशा उस समय बड़ी विचित्र थी। मकान की एक एक ईंट के प्रति मेरे हृदय में ममता का अपार स्रोत फूट रहा था ! अपने जगमगाते हुए आभूषणों को, अपने सुन्दर-सुन्दर क़ीमती वस्त्रों को, अपने पाले हुए रंग बिरंगे पक्षियों को, सजे हुए कमरों को, कमरों के प्रत्येक फ़र्नीचर को, प्रत्येक चित्र को, सभी वस्तुओं को, जिन्हें मैं अपना कहती थी, मैं सौ सौ बार देखती परन्तु तृप्त न होती थी !

हृदय में केवल एक ध्वनि गूँज रही थी—

आज—केवल आज—

और आज के बाद फिर कभी नहीं !

मैं उस दिन सब कुछ अपनी आँखों में सदा के लिये व्याप्त कर लेना चाहती थी ! उस दिन मेरे आठ वर्ष के एकान्त-व्रत का उद्यापन था ! महराजिन ने बार बार भोजन कर लेने का

आग्रह किया परन्तु मैंने इन्कार कर दिया। उस दिन इधर से उधर निरुद्देश्य सी घूमती रही। कभी कुछ देखती, कभी कुछ! दोपहर तक यही विक्षिप्त अवस्था रही। किन्तु ज्यों ज्यों सन्ध्या समीप आती जाती थी, वैसे ही वैसे, मेरा हृदय एक असीम शान्ति का अनुभव करता जाता था!

दोपहर तक मैं उनके समीप न गई! मुझे ऐसा भ्रम होता जैसे उनके पास जाते ही मेरे धैर्य का बाँध टूट जायगा।

लेकिन, जाने क्यों—दोपहर के बाद से मैं उनके पास से एक क्षण के लिये भी न हटी। मैंने उन्हें बतलाया कि डाक्टर ने कहा है कि कोशिश करेंगे, सम्भव है सफलता मिले।

यह सुनकर एक बार फिर उनमें उत्साह आ गया। मेरा हृदय उस समय वज्र की भाँति कठोर हो रहा था!

शाम को—

मैंने भोजन भी किया और शृंगार भी—

आईने में अपना वही चिर-परिचित सौन्दर्य एक बार जी भर-कर देखा, और तब—

नौ बजे रात को—

डाक्टर के बुलाने पर उनकी प्रयोगशाला के लिये प्रस्थान किया!

दूसरे दिन—

हाँ, दूसरे ही दिन से मेरे लिये अन्धकार—केवल अन्धकार शेष रह गया? जागृति का संसार चिर-सुषुप्ति के संसार में बदल गया!

(८)

याद है—जब इक्कीसवें दिन उनकी आँखों की पट्टी खोली गई! तब मेरी दशा देखकर वे बच्चों की भाँति बिलख बिलखकर रोये थे!

मैं उन्हें धैर्य देती, उन्हें समझाती, लेकिन वे कुछ भी मानने को तैयार न थे। मैं उनके ग्लानि भरे शब्दों को सुनकर एक मधुर आनंद का अनुभव करती। मेरे मन में अलक्षित रूप से यह बात जम गई थी कि वे मेरे इस त्याग का उचित मूल्य देंगे। मुझे उनसे बड़ी बड़ी आशायें थीं।

महीने दो महीने तक वे एक क्षण के लिये भी मेरे पास से न हटे!

अपनी दिन भर की देखी हुई वस्तुओं का रोचक वर्णन करते। अपने नये नये अनुभवों का बखान करते, और इस सुख का सारा श्रेय मुझे देकर बड़े प्यार से शायद मुझे देखने लगते!

कभी मेरी बुझी हुई आँखों पर गहरे रंग का चश्मा लगाकर मुझे सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहिनाकर, नये नये आभूषणों से सजाते, फिर आश्चर्य से मुझे देखकर कहते—

"मीना! अरे तुम कितनी सुन्दर हो! चश्मा आँखों की सारी क्षति पूरी कर देता है। यदि तुमने अपनी यह बरबादी न की होती तो हम दोनों कितने सुखी होते?"

उनकी ये प्यार भरी बातें सुनकर मैं समझती कि मेरा जीवन यों ही आनन्दपूर्वक बीत जायगा। वे मेरे पास बैठकर हर वक्त मेरे मनोरंजन का प्रयत्न करते रहते! मेरे एक इशारे पर वे सब कुछ करने को तैयार रहते। लेकिन—उफ़!

कुछ ही दिनों बाद इस क्षणिक मोह का नशा धीरे धीरे उतरने लगा!

सैर सपाटे का बाज़ार गर्म हुआ। मित्रों की मंडली जुड़ी। कहने का तात्पर्य यह कि बाहरी आकर्षण मिला, घर की नीरसता से उनकी तबियत हटने लगी!

दिन में अब कठिनता से उनका सामीप्य सुलभ होता—

मैंने यह दशा देखी—अनुभव की—तो मन की सारी शान्ति

नष्ट हो गई ! यद्यपि मिलने पर वे अब भी प्रेम की बातें करते, मेरे त्याग के लिये बार बार कृतज्ञता प्रकट करते, परन्तु उन बातों की वह मिठास ही खो गई थी जो पहले मुझे प्रेमोन्मत्त बना देती थी !

अब उनके स्वर में वह स्वाभाविकता न थी—अब उनकी बातों में बनावट की बू आने लगी थी ! वह मौखिक सहानुभूति मुझे अच्छी न लगती !

मेरे हृदय में धीरे धीरे सन्देह का आधिपत्य हुआ—

परिस्थिति ही ऐसी हो रही थी !

वे अब मेरे पास आते तो मुझे ऐसा मालूम होता मानों भीग रहे हैं ! मैं अनुभव करती मानों वे किसी बहाने से शीघ्र से शीघ्र ही यहाँ से भाग जाना चाहते हैं ! उस समय—कभी कभी मुझे अपने नेत्रों को खो देने का भयंकर पश्चात्ताप होता लेकिन अब कौन सी ऐसी शक्ति थी जो इस क्षति की पूर्ति कर देती !

जीवन में आदि से अन्त तक पश्चात्ताप, रुदन, और घोर अन्धकार के सिवा और कुछ भी नहीं !

एक दिन—

वृद्ध सेक्रेटरी ने मुझसे आकर कहा—

"रानी बहू ! बड़ा ग़ज़ब हो रहा है। भैय्या की तो आदतें बिगड़ती ही जाती हैं दिनोदिन। मेरी तो इज्ज़त उनकी दृष्टि में अब नहीं के बराबर रह गई है। मैं कुछ कहता हूँ तो उल्टी सीधी सुनाते हैं। उस साल अभी आठ हज़ार की मोटर ख़रीदी है, उसे अब कहते हैं बेच दूँगा। भला यही हाल रहा कुछ दिनों तो वह वक़्त दूर नहीं जब हम लोग गली गली भीख माँगने लायक़ भी न रह जायँगे !"

मैंने कहा—

"भाग्य में जो कुछ लिखा है वह तो होकर ही रहेगा दादा !

समझ में नहीं आता है क्या हो गया है उन्हें !"

सेक्रेटरी बोले—

"लेकिन बहू ! एक बार तुम्हीं समझाओ ?"

मैंने उत्तर दिया—

"क्या कहूँ, समझाने के लिये आप तब कहते हैं जब मैं समझाने योग्य रही भी नहीं ! उनकी दशा सोच सोचकर छाती फटती है। मेरे तो समझ में नहीं आता क्या करूँ ? किस तरह उनकी मति सुधर जाय ?"

इसी तरह—

कह सुनकर सेक्रेटरी चले गये !

मैं फिर एक गहरी चिन्ता में डूब गई—

भविष्य की काली छाया रह रहकर मुझे डराने लगी ?

मैं कुछ न सोच सकती थी कि क्या किया जाय ?

जीवन की उन घड़ियों की अशान्ति केवल मेरे अनुभव करने की वस्तु मात्र बन गई थी !

ईश्वर ने मेरे सौभाग्य को धीरे धीरे मुझसे दूर करना चाहा !

जब वे मुझसे मिले तब मैंने दबी ज़बान में कुछ कहने का साहस किया परन्तु उसका उत्तर ?

उसका उत्तर यही मिला कि औरतों को ऐसे कामों से क्या सरोकार ?

और उपदेश या सलाह—

उनके काम आती है जिनको समझ नहीं होती !

वे बच्चे तो नहीं थे—अपना भला बुरा समझ सकते थे !

लेकिन—इसी भाँति वे अपने हृदय की दुर्बलताओं को छिपा रहे थे !

(६)

दूसरे दिन—

उस अशान्त वातावरण से ऊबकर मैंने उनसे कहा कि माँ ने बुलाया है। कुछ दिनों के लिये वहीं जाने की अनुमति मिले—उन्होंने बड़े उत्साह से मुझे जाने की अनुमति दे दी—हाँ, कुछ बातें इस ढंग से अवश्य कहीं जिनसे बाध्य होकर मुझे वहाँ से चला जाना ही श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। आज मैं कितनी निरर्थक वस्तु थी उनके लिये !

मायके आने पर--

माँ के असीम स्नेह ने कुछ दिनों के लिये मेरी वेदना पर अपने दुलार का एक महीन सा पर्दा डाल दिया परन्तु—

आठ नौ महीने बीत जाने पर—

उनके वियोग में मुझे माँ के पास रहना कठिन हो गया और मैं ससुराल वापस चली आई।

बूढ़ी महराजिन ने मुझे ले जाकर मेरे उसी पूर्व-परिचित कमरे में बिठा दिया। मेरे हृदय में उस समय एक अपार शून्यता छा रही थी ! मैं जाने किन भावनाओं में विभोर हो रही थी !

इतने में—

सहसा किसी ने मेरे पैरों को स्पर्श किया ?

मैं चौंक पड़ी !

महराजिन से पूछने पर मालूम हुआ—

कि मेरे आठ नौ वर्ष की सेवा, त्याग और तपस्या का यह सुन्दर वरदान है !

जो मेरे पैरों को सहस्र सर्प-दंश की भाँति बारबार स्पर्श कर रहा है !

यह थी मेरे पति की नवीन पतनी—सुरमा !

मैं अपने संसार की और उसके संसार की तुलना कर रही थी मन में !!



उसने कहा—

"सतीश ! क्या तुम्हारे भाई का दिल नहीं है जो अपनी एक ग़रीब बहिन को दे सको ?"

सतीश पर मानों बिजली गिर पड़ी। कुछ सम्हलकर उसने कहा—

"कमल ! तुम यह क्या कह रही हो ? आज, मेरी इतने दिनों की तपस्या, आराधना, पूजा, सब कुछ..."

बात काटकर कमल ने कहा—

"नहीं सतीश ! मैं जो कुछ माँगती हूँ, अपने और तुम्हारे दोनों के भले के लिये माँगती हूँ और—वह तुम्हें देना ही पड़ेगा !"

"क्यों ? अगर मैं इन्कार करूँ ?"

"तो मैं समझूँगी कि तुम्हारा प्रेम झूठा था और—वह थी केवल एक वासना !"

"समझ गया। तुम मेरी परीक्षा लेती हो ?"

"बेशक—भाई बनकर अपनी कमल को अपने चिर-स्नेह का दान दे सको इसलिये ! सतीश ! बोलो ?"

"उफ़ ! टूटा हुआ दिल, अरमानों की राख और बुझती हुई आत्मा का अभिशाप और—फिर भी परीक्षा ? क्यों कमल ?"

"एक नये जीवन की तैयारी कर सको इसलिये सतीश !"
"लेकिन—मैं सुखी न हो सकूँगा इस जीवन में कमल ?"
"भूलते हो सतीश ! समय की गति कैसी होती है—सोचा है कभी ? आँसू जब हँसी में बदल जायेंगे एक दिन..."
"कौन जाने—तब तक ?"
"भैय्या सतीश ?"
"बहिन ?"
"आज का दिन कितना अच्छा है ! मैंने तुम्हें—तुम्हें अपना बना लिया है भैय्या ! अब, मुझसे भागकर कहाँ जाओगे ?"
"लेकिन कमल ! हमारा कर्त्तव्य-मार्ग ?"
"पृथक् होगा भाई ! पर हम तुम, आज के बाद भी मिलेंगे, सम्भवतः कई बार मिलेंगे—एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब—"
"जब ?"
"जब तुमको भाई का कर्त्तव्य थोड़ी दृढ़ता के साथ पालन करना होगा। बहिन कहा है जिसके उसकी लाज रखनी होगी !"
"मैं कुछ नहीं समझा कमल ?"
"नहीं समझे ? अच्छा हुआ—भाई ! अब देर होगी। ट्रेन का समय—"
"पर जाओगी कहाँ ? कुछ बताओ तो ?"
"कैसे बताऊँ सतीश ! मौत से हर समय खेलनेवालों का ठिकाना कैसे बता सकती हूँ तुम्हें—"
"क्या ?"
"ऐसी ही बात है भैय्या ! देखो—तुम उसी सत्ता के ग़ुलाम हो जिसे हम लोग मिटाना चाहते हैं। अच्छा, नमस्ते !"
पास खड़ी हुई मोटर पर बैठकर कमल चल दी। सतीश आश्चर्य से देखता रहा। दो बरस में ही, कमल कितनी बदल गई थी !

और फिर—
वह कितनी रहस्यमयी ! परन्तु—
सतीश ने जीती बाज़ी हार दी थी !
भाई और बहिन—कर्त्तव्य के पथ पर चल सकेंगे या नहीं—
वह नाता निभाना है !
सतीश के आगे यही प्रश्न था !

* * *

रात के एक बजे—
पंजाब-एक्सप्रेस पूरी रफ़तार पर चली जा रही थी।
एक सेकेण्ड क्लास के डब्बे में—
सिर्फ़ दो ही यात्री थे—
...बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर मिस्टर चोपड़ा और दूसरी थी एक अपटूडेट फ़ैशनेबिल युवती !
दोनों एक दूसरे से अपरिचित, आमने सामने बैठे थे !
हवा तेज चल रही थी। मिस्टर चोपड़ा को कुछ ठण्ढ मालूम हुई। उन्होंने अपने हाथ का अख़बार सीट पर रख दिया और बिछे हुए बिस्तर के सिरहाने से कम्मल निकालने लगे—
युवती ने अँगरेजी में पूछा—
"महाशय ! क्या मैं आपका अख़बार ज़रा देख सकती हूँ ?"
सहज ही मुस्कराकर मिस्टर चोपड़ा ने उत्तर दिया—
"जी हाँ, ज़रूर, शौक़ से देखिये—"
उन्होंने अख़बार उठाकर युवती की ओर बढ़ाया—
युवती ने अख़बार लेते हुए एक तिरछी मुस्कराहट से कहा—
"धन्यवाद !"
"कोई बात नहीं—"
कहकर मिस्टर चोपड़ा, कम्मल ओढ़कर लेट रहे।
युवती अख़बार पढ़ने लगी—

दो ही मिनट बाद--

ट्रेन की रफ़्तार कुछ कम होने लगी—

युवती ने अख़बार रख दिया और खिड़की के बाहर झाँक कर देखा—

मुग़लसराय का स्टेशन आनेवाला था। पलक मारते ही उसने अपना हैन्डबेग खोला—कोई चीज़ उसके हाथ में चमक उठी!

डब्बे की बिजली की बत्ती धीरे से उसने बुझा दी—

खट से स्विच गिरने का शब्द हुआ—

मिस्टर चोपड़ा चौंककर उठने लगे—

युवती ने भरा हुआ रिवाल्वर उनकी कनपटी से सटाते हुए कहा—

"ख़बरदार! जो ज़बान से एक लफ़्ज़ भी निकला—उठकर अपना अटैची खोलिये—"

मिस्टर चोपड़ा ने चुपचाप उठकर अटैची खोला--

युवती ने कड़क कर कहा—

"आपके पास पचास हज़ार के नोट हैं, वे सब मुझे दीजिये—"

मिस्टर चोपड़ा क्षणभर हिचकिचाये--बैंक की रक़म?

युवती ने कहा—

"मैंने क्या कहा आपसे? जल्दी कीजिये वरना मुझे मजबूरन आपकी जान..."

बात पूरी होते न होते मिस्टर चोपड़ा ने नोटों का बण्डल धीरे से युवती के बायें हाथ में दे दिया। युवती बोली—

"बस, अब ख़ामोशी के साथ कम्मल ओढ़कर लेट जाइये—जसे पहिले लेटे थे! ख़बरदार अगर आपने शोर मचाने का इरादा भी किया!"

मिस्टर चोपड़ा ने उसकी उँगलियाँ रिवाल्वर से खेलती हुई देखकर कम्मल ओढ़कर लेटना ही स्वीकार किया। ट्रेन पटरियाँ बदल रही थी!

युवती तुरन्त पेशाब-घर में घुस गई !

मिस्टर चोपड़ा केवल उसकी आवाज़ सुन सके—

"याद रखिये ! आपने ज़रा भी शोर मचाया और रिवाल्वर की गोली ने आपको अपना निशाना बनाया !"

दो मिनट बाद—

मुग़लसराय के स्टेशन पर गाड़ी रुकी—

मिस्टर चोपड़ा घबराकर उठे—शोर मचाया—भीड़ जमा हुई—

पुलिस आई—जाँच पड़ताल शुरू हुई !

युवती का कहीं पता न था !

कुछ दिनों बाद—अख़बारों में इस डकैती का पूरा हाल छपा—पता लगानेवाले को लम्बे चौड़े इनाम की घोषणा की गई परन्तु व्यर्थ !

पुलिस और सी० आई० डी० के अधिकारी बड़ी सरगर्मी से इस मामले की खोज करते रहे लेकिन उस डकैत रमणी की हवा तक न मिली !!

*　　　*　　　*

एक टूटे फूटे मकान के बाहर—

पाँच-छः वर्ष का छोटा-सा लड़का अचानक खेलते खेलते ख़ुशी से फूलकर चिल्ला उठा—

"दीदी आई—दीदी आई—अम्मा ! अरी अम्मा ! जल्दी आ—आ री—देख, दीदी आ गई !"

मकान के भीतर से एक दुबली पतली स्त्री निकली—उसके तन पर फटे हुए मैले वस्त्र थे, उसने कहा—

"क्यों रे मन्नू ! कहाँ आई दीदी ? झूठ ही ?"

मन्नू दौड़कर आगे जा पहुँचा। सामने से—

खद्दर की साड़ी पहिने, छाता लगाये एक युवती चली आ रही थी। मन्नू उसकी उँगली पकड़कर उसे खींचता हुआ ले आया और

बोला—

"ये देखो दीदी आई—मगर मेरी दीदी हैं, तेरी नहीं, हाँ अम्मा!"

उस युवती ने हँसकर कहा—

"हाँ रे मन्नू! मैं तेरी ही दीदी हूँ—"

फिर वह मन्नू की माँ की ओर देखकर बोली—

"नन्हें का क्या हाल है अब?"

उसने जवाब दिया—

"वैसा ही है—"

"दवा दी थी?"

"हाँ—कुछ फ़ायदा नहीं—"

"मैं देखती हूँ—"

कहकर युवती ने ठण्ढी साँस ली। सब लोग भीतर गये। ज़मीन पर चीथड़ों के बीच में एक दुबला, रुग्ण, शिशु सो रहा था। युवती ने उसके माथे पर हाथ रखकर देखा फिर बोली—

"घबराना नहीं, दवा देती जाओ, ईश्वर चाहेगा तो दो एक दिन में फ़ायदा हो जायगा ज़रूर—".

युवती के हाथ में कपड़े की एक पोटली थी। उसने मन्नू को बुलाकर देते हुए कहा—

"मन्नू! ये हैं तेरे कपड़े और मिठाई और खिलौने—ले जा, अब तो मेरी तेरी खुट्टी नहीं रही? ले, मिट्ठी हो गई—बोल?"

"मिट्ठी हो गई—दीदी से मिट्ठी हो गई!"

सब चीज़ें पाकर मन्नू ख़ुशी से कूदने लगा!

मन्नू की माँ बोली—

"बेटी! इस बार बहुत दिन..."

बात काटकर युवती ने कहा—

"हाँ, मैं बाहर चली गई थी, बहुत दूर। तुम्हारे ख़र्च के रुपये तो ख़त्म हो गये होंगे अब?"

युवती ने अपने हैण्डबेग से आठ रुपये निकालकर देते हुए कहा—

"रखो इन्हें—"

मन्नू की माँ ने रुपये लेकर माथे से लगाये और अपनी धोती के छोर से बाँधते हुए बोली—

"बेटी! परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखे!"

"सुखी?"

युवती हँस पड़ी! फिर क्षणभर में ही उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

वह बोली—

"तुम लोग सुखी रहो इसी में मेरा सुख है मन्नू की माँ!"

"बड़ी उमर हो तुम्हारी बेटी!"

युवती किंचित् खीझकर बोली—

"बस, यही आशीर्वाद तो तुम्हारा मुझे अच्छा नहीं लगता?"

मन्नू की माँ कुछ सकुचाती हुई कहने लगी—

"क्यों?"

"क्यों की बात क्या करोगी जानकर! अच्छा लाओ, थोड़ा सा गुड़, वही जो तुमने घर में बनाया था--"

मन्नू की माँ भीतर से गुड़ की एक डली और लोटे में पानी ले आई।

युवती गुड़ खाते हुए बोली—

"कितना मीठा है यह गुड़—बड़ा अच्छा बनाती हो!"

मन्नू की माँ उसकी ओर देख रही थी!

मन्नू नये नये कपड़े पहिनकर खिलौने की मोटर-गाड़ी में मगन हो रहा था!

* * *

शाम को ड्यूटी से लौटकर सतीश अपना यूनीफ़ार्म उतार रहा था।

उसकी बूढ़ी माँ ने आकर कहा—

"भैय्या !"

सतीश चौंक सा गया—उसने कहा—

"क्या है माँ ?"

"कुछ नहीं, यही कह रही थी कि मुँह अँधियारे का गया गया तू अब लौटा है चिराग़ जले ? सारे दिन कुछ खाया भी नहीं—"

सतीश कुछ सोचते हुए बोला—

"हाँ—"

"आइने में मुँह तो देख बेटा ! कैसा सूख रहा है तू ? जब से नौकरी की, दिनरात किसी घड़ी चैन नहीं—"

सतीश बोला—

"क्या करूँ माँ ! नौकरी तो आख़िर नौकरी ही है—"

"मुझे तो तेरी यह नौकरी पसन्द नहीं—"

"हाँ माँ ! सच कहती हो तुम—किसी और ने भी कहा था यही एक दिन—"

"किसने ?"

"माँ ! मेरी एक बहिन है—तुमने तो देखा है उसे ?"

"किसे ? कमल की बात कहता है तू ?"

"हाँ माँ !"

"तो सच तो कहती है बेचारी, लेकिन वह है कहाँ बेटा ? दो तीन बरसों से उसे देखा ही नहीं—"

सतीश ने एक ठण्ढी साँस ली। वह क्या उत्तर देता ! माँ को क्या बता देता—

क्रान्तिकारी दल की सदस्या—एक फ़रार अभियुक्त—कमल के जीवन का वह इतिहास किसी से कहने की बात न थी !

वह था सब-इन्सपेक्टर पुलिस !

कपड़े बदलकर वह खाना खाने बैठा—

माँ पंखा झलने लगी—

सतीश ने कहा—

"माँ ! सचमुच तुम्हें मेरी नौकरी पसन्द नहीं ?"

माँ ने बेटे की ओर देखा—

सतीश के पूछने का ढँग देखकर वह कुछ समझ गई—बोली—

"पसंद न होने की बात यही है कि तेरी तन्दुरुस्ती दिनोदिन गिरती जा रही है !"

"अरे माँ ! सब ठीक ही है। आजकल के ज़माने में रोज़ी का सवाल बड़ा टेढ़ा है—शाम तक रोटियाँ मिलती रहें जिससे, वही रोज़ी सबसे अच्छी !"

सतीश खाना खाने लगा। कुछ ठहरकर माँ ने फिर पूछा—

"भैय्या ! तू ब्याह कब करेगा रे ?"

पानी का ग्लास रखते हुए सतीश ने कहा—

"ब्याह ? हो जायगा कभी—जल्दी काहे की ?"

"वाह रे ! जल्दी काहे की—क्या मैं अमर-फल खाकर बैठी हूँ जो हमेशा जीती रहूँगी ? ब्याह कर तू—सुन्दर सी बहू घर में आये, मैं भी आँखों का सुख देख लूँ कुछ दिन—"

"लेकिन माँ ! कमल ने भी तो ब्याह नहीं किया ? अभी तक नहीं किया ?"

"छोड़ रे उसकी बात—आजकल की पढ़ी लिखी लड़कियाँ ऐसे ही मारी मारी फिरने में अपनी शान समझती हैं !"

"पर, जब लड़की होकर उसे ब्याह की जल्दी नहीं तो मुझे ही क्यों ब्याह करने को कहती हो ? मैं कौन बूढ़ा हो गया हूँ ?"

किसी ने द्वार की साँकल खटकाई—

रामू ने आकर कहा—

"चौकी पर से सिपाही आया है, कहता है कि सुपरिन्टेंडेंटसाहब का टेलीफोन आया था। आपको जल्दी बँगले पर बुलाया है।

जरूरी काम है कुछ—"
सतीश ने कहा—
"जाकर कह दे—मैं अभी आया !"
रामू चला गया। सतीश ने जल्दी से खाना समाप्त किया और कपड़े पहिनने लगा। बूढ़ी माँ ने धीरे से कह ही डाला—
"कैसे सुख की नौकरी है तेरी, क्यों रे सतीश ?"
सतीश कपड़े पहिनकर चुपचाप चल दिया !

* * *

बम्बई में—
जेनरल एक्सपोर्ट कम्पनी के मालिक सेठ मगनलाल मानिकचंद अपनी दूकान बन्द करवाकर घर जाने की तैयारी में थे। उन्होंने खज़ान्ची से पूछा—
"आज की रोकड़ ?—"
खज़ान्ची ने थैली उठाकर उनके हाथ में देते हुए कहा—
"उन्तालीस हज़ार पौने पाँच आने—"
सेठजी ने थैली सम्हाली और द्वार तक आये इतने में हरे रँग की एक बड़ी सी ब्यूक-मोटर बड़ी तेज़ी के साथ आकर सामने रुकी—किसी ग्राहक को आता जानकर सेठजी पीछे हटे। दस बजकर बीस मिनट आये थे और रात का वक़्त दूकान बन्द हो जाने का था फिर भी वे ठहर गये कि शायद कोई ज़रूरी काम से ग्राहक आया हो—मोटर से एक पारसी रमणी उतरकर उनके सामने आई। उसने कहा—
"सेठजी ! मुझे आपसे बहुत ज़रूरी प्राइवेट बात कहनी है, ज़रा भीतर तो चलिये—"
"हाँ, हाँ चलिये—"
कहकर सेठजी उसे दूकान के पीछे की तरफ़ अपने प्राइवेट दफ़्तर में ले गये। कमरे में पहुँचने के बाद उस रमणी ने पूछा—

"सेठजी ! आपने बिहार-भूकम्प पीड़ितों के लिये कितना चन्दा दिया है ?

सेठ जी थोड़ा चकराये फिर कुछ सकपकाकर बोले --

"ज़रूरत ? मैंने तो चन्दा नहीं दिया—"

रमणी ने एक भरा हुआ पिस्तौल उनके सामने करते हुए कहा—

"तो आज की बिक्री का सारा रुपिया इधर लाइये—जो लोग अपना फ़र्ज़ नहीं जानते उनको सिखाना पड़ता है—"

सेठजी ने घबराकर रुपियों की थैलीवाला हाथ पीछे हटाने की चेष्टा की—

पारसी रमणी ने उनकी इच्छा समझकर ज़ोर से कहा—

"बस, ठहरिये ! रुपिया इधर लाइये वरना आपकी ज़िन्दगी..."

सेठजी ने चुपचाप रुपियों की थैली उसके हवाले कर दी ?

रमणी ने कहा—

"बस—आप यहीं ठहरिये, सिर्फ़ दो मिनट तक—ख़बरदार अगर मुँह से आवाज़ निकली तो जान की ख़ैर नहीं !"

पलक मारते ही वह रमणी रुपियों की थैली लिये हुए कमरे से बाहर निकली और बाहर से दरवाज़े की साँकल लगा दी। फिर दूकान में जाकर खज़ान्ची और मुनीमजी से बोली—

"दौड़ो, जाओ, सेठजी को ग़श आ गया है, मैं डाक्टर को बुलाती हूँ—"

सब नौकर घबराकर दूकान के पीछे दफ्तर की तरफ़ भागे।

रमणी ने एक चाक़ू निकालकर टेलीफ़ोन का तार काट दिया और चट बाहर निकलकर मोटर में जा बैठी !

पलक मारते ही मोटर हवा से बातें करने लगी !

जब सेठजी और उनके कर्मचारी बाहर दूकान में आये तब पारसी रमणी का कहीं पता न था !

दौड़ो—पकड़ो—डाका पड़ गया ! सब कुछ शोर मचाया।

टेलीफोन करके पुलिस को इत्तिला करनी चाही मगर तार ही कटा !

सेठजी सिर पकड़ कर धम्म से बैठ गये !

हाय रे उन्तालीस हज़ार !

उन्हें अपनी लाचारी और बेवक़ूफ़ी पर क्रोध आ रहा था— एक मामूली औरत के हाथों लुट जाने का ज़िन्दगी में उनका पहिला ही मौक़ा था ! मगर—वे क्या जानते थे कि वह डाका डालेगी ?

खज़ान्ची ने पूछा—

"सेठजी ! अब क्या होगा ?"

सेठजी चौंककर बोले—

"वही, जो रोज़ हुआ करता है—"

"मगर रोकड़ की थैली ?"

"अरे थैली का क्या करोगे जब रोकड़ ही चली गई !"

"फिर—इसका उपाय ?"

"उपाय ? यही—बस, मैं तुम्हारा मुँह देखूँ और तुम मेरा !"

बेचारा खज़ान्ची खिसियाकर चुपचाप गद्दी पर जा बैठा।

सेठजी की छाती लुहार की धौंकनी की तरह धकधक कर रही थी !

* * *

पुलिस सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर एक्मैन ने अपने हाथ का सिगार ट्रे में रखते हुए कहा—

"वेल, सबइन्सपेक्टर ! तुम बहुत तेज़ आदमी है। होशियार है !"

सतीश ने उत्तर दिया—

"जी, फिर आपका हुक्म ?"

"इसीलिये तुम जाकर फूलपुर में इनक्वायरी कर सकता है।

वह लेडी फूलपुर जाया करता है, समझा। मेरा रिपोर्ट सच्चा है। तुम कब जायगा ?"

"अब तो कल शाम को ही ट्रेन मिल सकेगी—कल जाऊँगा।"

'अच्छा, मगर होशियार रहने का है, वह लेडी बड़ा खतरनाक है !"

"जी, सुना ऐसा ही है—"

देखो मिस्टर सतीश ! तुम उसको पकरेगा तो तुम्हारा तरक्की हो जायगा, ग्रेड बढ़ जायगा। तुम अच्छा आदमी है।"

सतीश ने कुछ गम्भीरता से कहा—

"जी, आपकी मेहरबानी !"

साहब ने अपनी मेज की दराज़से एक फ़ोटो निकालकर सतीश को देते हुए कहा—

"यह फ़ोटो का कापी साथ रखने का है--उसी का है यह फ़ोटो !"

सतीश फ़ोटो देखकर चौंक पड़ा !

अरे ! कमल ? क्रान्तिकारिणी डकैत-रमणी ?

उफ़ ! यह क्या ? सतीश को जाना होगा, कमल को गिरफ़्तार करने ?

साहब ने पूछा—

"क्यों ? पहिचानता है तुम इसको ?"

सतीश घबराकर कह गया—

"जी हाँ—नहीं—नहीं—"

साहब ने उसकी हालत देखकर फिर पूछा—

"वेल सब-इन्सपेक्टर ? तुम नहीं जानता इसको ?"

इस बार सतीश ने अपने को सम्हालकर दृढता से कहा—

"नहीं, मैंने तो इस फ़ोटो के सिवा इसे पहले कभी नहीं देखा ?"

"अच्छी बात है—कल शाम को तुम जायगा फूलपुर और

फूलपुर के ठाने का जितना कान्सटेब्ल तुम चाहेगा, तुमको फ़ौरन मिलेगा, मेरा आर्डर भेजा है वहाँ! जाओ तुम—"

साहब उठ खड़े हुए।

सतीश सलाम करके चल दिया!

बँगले के बाहर आते ही एक ताँगेवाले को देखा—

सतीश ने इशारा किया। ताँगा पास आया। सतीश बैठ गया।

ताँगेवाले ने पूछा—

"किधर चलूँ हुज़ूर?"

सतीश ने उत्तर दिया—

"कूचा दौलतराम!"

ताँगा चल दिया। रास्ते में सन्नाटा था, दो चार लोग इधर-उधर आ जा रहे थे। ताँगेवाला बोला—

"हुज़ूर? आज बड़ी रात हो गई, क्या बजा होगा?"

सतीश ने अपनी रिस्टवाच की तरफ़ देखकर कहा—

"साढ़े बारह!"

ताँगेवाले ने कहा—

"ओफ़! बड़ी देर हो गई आज तो—"

लगभग दस मिनट बाद—

सतीश घर के द्वार पर उतरा—ताँगेवाले को पैसे देकर विदा किया फिर भीतर जाकर सब कपड़े पहिने के पहिने बिछौने पर जाकर लेट रहा! वह सोच रहा था—

कमल! कमल की गिरफ़्तारी करना है उसे!

नौकरी का फ़र्ज़ अदा करना होगा, जैसे भी हो—मगर कमल क्या कहेगी? क्या भाई का यही कर्त्तव्य है?

* * *

वही गाँव—वही टूटा हुआ मकान!

मन्नू की माँ एक कोने में पड़ी हुई भीषण पीड़ा से कराह रही थी!

उसका नन्हा सा शिशु उसकी छाती से चिपका हुआ सूखे स्तनों को मुँह में लगाये व्याकुल होकर बिलख रहा था !

आठ दिन से जिसे भोजन न मिला हो उस माता के स्तनों में दूध कहाँ से आये ? बेचारा अबोध शिशु क्या जाने इस बात को !

मन्नू लकड़ी के एक घोड़े पर लकड़ी के सवार को बिठाने की कोशिश कर रहा था मगर सवार बार बार गिर पड़ता था। खीझकर मन्नू ने घोड़ा और सवार दोनों को उठाकर एक तरफ़ कोने में पटक दिया और माँ के पास आकर बोला—

"माँ ! दीदी कब आयेंगी ?"

माँ ने बड़े कष्ट से धीमे स्वर में उत्तर दिया--

"क्या जानूँ बेटा ?"

मन्नू उठकर द्वार तक गया। इधर उधर देखता रहा फिर लौट कर माँ के पास आ बैठा। वह बोला—

"अभी तक नहीं आई दीदी ?"

माँ ने ज्वर के ताप से व्याकुल होकर कहा—

"हे भगवान् !"

मन्नू ने जिज्ञासा-वश पूछा—

"माँ ! भगवान् कौन हैं ? क्यों उनका नाम लेती है ?"

माँ ने उत्तर दिया—

"परमपिता हैं वे ! मेरे, तेरे, सारी दुनिया के रखवाले, वे ही हैं बेटा !"

"तू ने उन्हें देखा है माँ ? कैसे हैं ?"

मन्नू की माँ को ज़ोर की खाँसी आई। मुँह से थोड़ा कफ़ और रक्त निकला। कुछ ठहरकर उसने कहा--

"मन्नू ! पानी दे थोड़ा--"

मन्नू ने मिट्टी के एक कुब्जे में पानी पिला दिया। पानी पीकर वह कुछ स्वस्थ हुई और बोली—

"बेटा ! भगवान् किसी को दिखाई नहीं देते पर वे सबको देखते हैं !"

मन्नू के मन में यह बात कुछ जमी नहीं, उसने पूछा--

"दिखाई नहीं देते ? कैसे भगवान् हैं फिर ?"

"बड़े सुन्दर ! बड़े अच्छे ! बेटा ! वे घटघट की जानते हैं—तू भी उनका नाम लिया कर—"

नाम लेने से बोलेंगे ? हाँ, करेंगे ?"

"नहीं, वे बोलते नहीं किसी से, सुन लेते हैं सबकी पुकार बेटा !"

"नहीं बोलते तो मैं उनका नाम भी नहीं लूँगा--"

"चुप चुप--ऐसा नहीं कहते पाप होता है ! हाँ, पुकार--हे भगवान् !"

मन्नू ने कुछ न कहा। वह चुप था। माँ ने फिर कहा—

"नहीं लेगा नाम--अच्छा !"

उसने अपना मुँह फेर लिया ! मन्नू दुखी होकर बोला--

"नहीं माँ ! इधर देख—मैं कहूँगा—हे भगवान् !"

दरवाजा खोलकर पड़ोसी हरखू ग्वाला हाथ में लोटा लिये भीतर आया। मन्नू की माँ के पास जाकर बोला—

"कैसा जी है काकी ?"

"कैसा बताऊँ भैय्या ! अब तो..."

कमजोरी के कारण वह बोल न सकी। हरखू ने कहा—

"काकी ! यह दूध लाया हूँ, दो सेर है, बच्चों को पिला दो, थोड़ा तुम पी लो—गरम करके लाया हूँ, भला ?"

हरखू ने लोटा उसके पास रख दिया फिर बोला—

"तुम घबराना नहीं काकी ! कोई तकलीफ़ हो तो मुझे कहला देना खेत पर—देखो, दीदी कह गई थीं मुझसे कि मन्नू की माँ को कोई तकलीफ़ न होने पावे। मगर मैं ही बीमार पड़ा था इतने दिनों से ?"

"भगवान् तुम्हारा भला करे—"
मन्नू की माँ ने धीरे से कहा। हरखू चला गया।

* * *

धीरज गाँव के इलाक़े में—
ठाकुरों ने जो वहाँ के ज़िमींदार थे, गाँव के चौधरी हीरा के घर कुर्क़ी भेजी—
गाय, भैंसें, हल, बैल, सब खोलकर आँगन में खड़े किये गये!
हीरा सतृष्ण नेत्रों से उनकी ओर देख रहा था। आँखों में आँसू भरे वह चुपचाप खड़ा था! पैसे से असमर्थ होने के कारण वह क्या करता!
कारिन्दे घर के भीतर घुसने लगे—
अब हीरा से न रहा गया—वह बोला—
"भैय्या! औरतों में क्यों घुसे जाते हो? यहीं ठहर जाओ, लोटा थाली जो कुछ घर में है, मैं ही निकाले लाता हूँ—"
एक कारिन्दे ने डाँटकर कहा—
"ख़ामोश! हम अपना काम करते हैं। तू कौन होता है बोलनेवाला?"
हीरा को ग़ुस्सा आ गया। वह लपककर घर की चौखट पर जा खड़ा हुआ, उसने कहा—
"मेरे जीते जी तुम औरतों को बेआबरू नहीं कर सकते, समझे?"
कारिन्दे ने उलटकर एक भरपूर तमाचा हीरा के गाल पर दिया। पाँचो उँगलियाँ उछल गईं। बूढ़ा हीरा खून का घूँट पीकर रह गया!
कारिन्दे ने आवाज़ दी—
"माधोसिंह! लल्लू महराज ! खड़े क्या देखते हो? दो एक लट्ठ साले के—"
बाक़ी दोनों कारिन्दे लाठियाँ सीधी कर आगे बढ़े—

गाँववालों की भीड़ खड़ी-खड़ी देख रही थी। एक जवान कूदकर बाहर आया और उसने आगे बढ़कर दोनों की लाठियाँ पकड़ लीं।

लल्लू महराज गरजकर बोले—

"तू कौन है रे ? बड़े बाप का बेटा ! ऐसी हमदर्दी है तो निकाल टेंट से, गिन दे साढ़े तीन सौ रुपये ?"

जवान ने उत्तर दिया—

"कोई भी हूँ मैं, मगर नवाबी नहीं है यहाँ—सरकारी अमलदारी में घरजानी मनमानी नहीं चलेगी तुम लोगों की ! देखूँ किसका दम है जो घर में क़दम रख जाय—"

वह जवान दौड़कर हीरा के पास ही द्वार पर जा खड़ा हुआ—तीनों कारिन्दे लाठियाँ उठाकर उधर झपटे—

इतने में, जाने कहाँ से एक औरत दौड़ती हुई वहाँ आ खड़ी हुई और उसने ज़ोर से पुकारकर कहा—

"ठहर जाओ—"

सब लोगों ने देखा—खद्दर की साड़ी पहिने एक सुन्दर स्त्री सामने खड़ी थी। भीड़ में से कुछ लोग चिल्ला उठे—

"दीदी ! दीदी !"

उस स्त्री ने कारिन्दों की ओर देखकर कहा—

"क्यों इतना ज़ुल्म करते हो ?"

माधोसिंह ने उत्तर दिया—

"ज़ुल्म ? लगान का रुपिया अदा नहीं होता तो हमारी सख़्ती को ज़ुल्म बतलाती हो ? पूछो हीरा से ?"

लल्लू महराज ने त्योरी चढ़ाकर कहा—

"बड़ी हिमायतिन हो तो गिन दो रुपिया—हमें इनसे दुश्मनी थोड़े ही है !"

उस स्त्री ने हीरा की ओर देखा और कहा—

"चौधरी! कितना रुपिया देना है तुम्हें ?"

हीरा ने धीरे से सिर नीचा किये हुए कहा—

"साढ़े तीन सौ—"

उसने अपना हैंडबैग खोला। नोट ही नोट भरे थे। साढ़े तीन सौ गिनकर करिन्दों के हाथ पर रखे और बोली—

"जाओ, अगर फिर कभी ऐसी हरकत की तो याद रखना—"

माधोसिंह बोला—

"क्यों? क्या फाँसी चढ़वा दोगी?"

स्त्री ने थोड़ा ठहरकर उत्तर दिया—

"फाँसी? तुम जैसे डाकुओं के लिये वह सज़ा भी कम है—जाओ यहाँ से—"

कारिन्दे चले गये आपस में बकझक करते हुए!

हीरा आगे बढ़कर उस स्त्री के पैरों पर गिर पड़ा और रोते रोते बोला—

"माजी! आपने आज मेरी आबरू बचा ली—"

स्त्री ने कहा—

"चौधरी! उसी ईश्वर में भरोसा रखो—इन्सान कुछ नहीं कर सकता, सब उसी की इच्छा से होता है!"

गाँववाले उसकी ओर बड़ी श्रद्धा से देख रहे थे!

वह सारे गाँव की दीदी थी! देवी को तरह पूजी जाती थी!

❀ ❀ ❀

दीपक का तेल समाप्त हो चुका था—

मन्नू ने कहा—

"दीदी! माँ का जी कैसा है?"

उसने एक ठण्डी साँस ली, फिर बोली—

"बेटे! क्या बताऊँ तेरी माँ..."

उसके आँसू न रुके—मन्नू बोला—

"दीदी ! माँ क्या सो गई है ?"
उसने उत्तर दिया--
"सो गई है—सदा के लिये सो गई है बेटा !"
उसने मन्नू को अपनी छाती से लगा लिया फिर बिछौने पर माँ की मृत-देह के पास बिलखते हुए शिशु की ओर देखकर कहा—
"मन्नू ! दूध का लोटा उठा ला—"
उसने एक दूध पिलाने की शीशी में थोड़ा सा दूध भरकर शिशु के मुँह से लगाया। शिशु दूध पीने लगा।
"दीपक यकायक ज़ोर से जल उठा—
किसी के आने की आहट पाकर दीदी ने पीछे मुड़कर देखा—
अयँ ! यह क्या ?
किसी ने यकायक हाथ बढ़ाकर खूँटी पर लटकता हुआ उसका हैंडबैग उतार लिया था ?
वह चौंकी—साथ ही, पाँच पुलिस कान्सटेब्ल उस घर में घुस आये। उनके हाथों में बन्दूक़ें थीं !
दीदी का हृदय धड़कने लगा—
सामने—सतीश, सब इन्सपेक्टर पुलिस के युनीफ़ार्म में हाथ में पिस्तौल लिये उसकी ओर क्रोध से देख रहा था--
सतीश ने कहा—
"उठो, हमारे साथ चलो कमल ?"
मन्नू ने घबराकर पूछा—
"दीदी ! ये कौन हैं ? सिपाही क्यों आये हैं ? तुम क्या इनके साथ चली जाओगी ?"
कमल ने कुछ न कहकर मन्नू को छाती से लगा लिया !
सतीश बोला—
"कमल ! उठो, हमें देर हो रही है ?"

कमल ने बड़ी कातर दृष्टि से सतीश को ओर देखकर कहा—

"भैय्या!"

सतीश की आत्मा हिल उठी! कमल कहने लगी—

"भैय्या! यह देखो—एक अनाथ ग़रीबिनी की लाश पड़ी है—ये दोनों बच्चे हैं इसी के—"

सतीश कुछ न बोला—शिशु को दूध पिलाते हुए कमल ने कहा—

"भैय्या! चलती हूँ मैं अभी, इस बच्चे को दूध पिला दूँ, बहुत भूखा है यह!'

सतीश का हृदय धड़क रहा था। बड़े धीरज से उसने कहा—

"कमल! दया से भरे हुए हृदय में इतनी कठोरता कैसे आ जाती है? मालूम है तुमने कितना ग़ज़ब ढा रखा है? तुम्हारी ही वजह से हम लोगों को यहाँ आना पड़ा है?"

कमल ने उत्तर दिया—

"क्या कहूँ सतीश! अभी भी मेरे मन की उमंगें पूरी नहीं हो सकी हैं और बीच ही में तुम आ गये!"

घर का दीपक बुझ गया। चारों ओर अँधेरा छा गया। कमल उठ खड़ी हुई। सिपाही पीछे हट गये। वह सतीश के पास आ खड़ी हुई। उसने धीरे से कहा—"भैय्या! याद है अपना वादा?"

सतीश मंत्रमुग्ध सा कह गया—

"याद है बहिन! मगर मेरा कर्त्तव्य?"

बात काटकर कमल ने कहा—

"नौकरी का कर्त्तव्य करते हुए भी भाई का कर्त्तव्य क्या भूल जाओगे?"

सतीश कुछ सोचने लगा फिर बोला—

"बहिन! मैं आज भाई का कर्त्तव्य भी पालन करूँगा और नौकरी का भी—"

सतीश का दाहिना हाथ कमल के हाथ से छू गया—कमल

समझ गई !

चट से उसने सतीश के हाथ से पिस्तौल छीनकर उसकी नली अपने माथे से लगाकर घोड़ा दबा दिया ! ठाँय—एक आवाज़ हुई ! कमल का निश्चेष्ट शरीर धरती पर गिर पड़ा। सतीश ने रूमाल से आँसू पोंछते हुए अपनी पीठ फेर ली ! फिर सिपाहियों से कहा —"उठाओ इसकी लाश—ले चलो !"

सिपाही लाश उठाकर चले—

मन्नू बिलख रहा था ! उसकी दीदी चली गई थी उसे छोड़कर !

❀ ❀ ❀

शहर में, अपने घर पहुँचकर सतीश ने कहा—

"माँ ! कमल मर गई और—और मैंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया !"

"क्यों ?" माँ घबराकर पूछ बैठी !

"तुमने कहा था न, कि यह नौकरी तुम्हें पसंद नहीं—कमल भी कहती थी !"

❀ ❀ ❀

धीरज गाँव और फूलपुर की सरहद पर—

गाँववालों ने आपस में चन्दा करके एक छोटा-सा मंदिर बनवा दिया—उसको वे लोग—"दीदी का मंदिर" कहते हैं !

सतीश ने वह मंदिर देखा है—वह भाई है उस बहिन का जिसने उसकी आत्मा को एक नया जीवन दे दिया ! और मन्नू ? उसका भाई ?

सतीश ने दोनों को अनाथालय में दाखिल करा दिया है ! दीदी की याद करके मन्नू अबभी बहुत रोता है !



[क]

हाँ—

हमारे परिचय का वह संसार—

प्रेम के संसार में बदल चुका था !

मैं सचमुच सुधा को चाहने लगा था !

चाँदनी की तरह सुन्दर बसन्ती बयार की भाँति मोहक—वह थी एक अनुपम् रूप-प्रतिमा जिसे मैंने अपने मनोमन्दिर में बिठाने का संकल्प कर डाला था ! हम दोनों मिलते थे, साथ-साथ घूमते फिरते और इस संसार के नियमों से अलग एक अपना नया संसार बसाने की सुखद कल्पना किया करते !

परन्तु—

नियति हमारे मनोभावों को न समझ सकी अथवा समझ करके भी उसने अपनी इच्छा के आगे हमारी उमंगों का मूल्य कुछ न समझा—मैं नहीं कह सकता ! जो कुछ होना था वही हुआ—

सुधा के पिता की बदली हो गई और वे नासिक के सिविल

अस्पताल में इन-चॉर्ज होकर चले गये। सुधा, कालेज में पढ़ रही थी अतएव बम्बई में ही रही। उसके पिता का अपना मकान था, मोटर थी, नौकर-चाकर थे !

और मैं—

विलायत से तार द्वारा अपने चुनाव की खबर पाकर बैरिस्टरी पढ़ने चला गया—क्या करता—पिताजी की आज्ञा ऐसी ही थी !

विलायत पहुँचने के बाद—

लगभग चार महीने तक तो मेरा और सुधा का पत्रव्यवहार जारी रहा परन्तु—फिर उसका कोई पत्र न आया !

मैंने उसे कई पत्र लिखे जवाब नदारद !

मैं बड़े सोच में था—बात क्या हुई ? क्या सुधा अपने पिता के पास नासिक चली गई ? क्या उसने पढ़ना छोड़ दिया ? कुछ भी समाचार मुझे न मिल सका। मेरा जी बहुत घबड़ाता रहा कुछ दिनों—

फिर—फिर धीरे धीरे समय ने सब कुछ भुला दिया ! मैं अपनी पढ़ाई में लग गया मगर चिन्ता न छूटी ! जीवन की लाचारी में वे दिन कैसे कटे, मैं ही जानता हूँ !

धीरे धीरे पढ़ाई की भी अवधि समाप्त हुई—

प्रवास के अनुभवों का मुझपर कोई स्थायी प्रभाव न पड़ा था ! कभी कभी सुधा की याद आ जाती तो मन व्याकुल हो जाता—परन्तु मेरी विवशता !

[ख]

बैरिस्टरी पास करके मैं भारतवर्ष लौट आया—

सोचा, कुछ दिन बम्बई घूम लूँ तब घर जाऊँ !

सर-सपाटा किये बिना जी न मानता था !

अक्तूबर का महीना समाप्त हो गया था, कुछ कुछ ठण्ड बढ़ रही थी—सवेरे कोई दस बजे मैं सैंढर्स्ट रोड के चौराहे पर ट्राम के इन्तज़ार में खड़ा था। किसी ने मेरे पास आकर बड़े ही करुण-स्वर में कहा—

"बाबू ! एक पैसा ?"

मैंने घूमकर देखा—

एक भिखारिन लड़की, सत्रह या अठारह वर्ष से अधिक न होगी, चीथड़ों से अपने तन को ढकने का प्रयत्न करती हुई बोली—

"बाबू ! एक पैसा ?

उसकी गोद में, एक सुन्दर सा चार महीने का बच्चा, एकदम गोरा रंग, स्वस्थ, और देखने सरीखा ! वह मुस्करा रहा था ! कितना भोला और आकर्षक ! मैं चकरा रहा था--

भिखारिन में तो कोई असाधारण बात न थी--साँवला रंग, दुबली, पतली, चिपटी नाक और बड़ा सा-मुँह ! परन्तु--यह बच्चा ? क्या इसी का है ? मैं सोचने लगा, क्या इसी की सन्तान है यह शिशु ?

सचमुच ही यह कुरूप भिखारिन इसकी माता हो सकती है ?

मुझे विश्वास नहीं हुआ--

दाहिनी ओर से ट्राम आती देखकर मैं आगे बढ़ने लगा—

भिखारिन ने फिर हाथ फैलाकर मुझसे कहा—

"बाबू ! दे दो परमात्मा की राह पर एक पैसा ?"

मैंने जल्दी में एक इकन्नी जेब से निकालकर उसके हाथ पर रख दी और ट्राम में बैठकर चल दिया ! रास्ते भर मैं यही सोचता रहा कि 'गुदड़ी में लाल' मिलने की कहावत क्या सच होती है ? मेरी समझ में न आता था !

कैसा सुन्दर बच्चा था वह और भिखारिन—कैसी ? जिसे देखें

घृणा उत्पन्न हो !
मेरे मन ने कहा—ग़रीबी के दिन ऐसे ही होते हैं !

[ग]

दूसरे दिन शाम को—
मुझे एक मित्र से मिलने फ़ोर्ट जाना था। मैं होटल से निकलकर चौराहे पर आया—
वही कलवाला स्थान !
मैं फ़ोर्ट जानेवाली ट्राम के आने की प्रतीक्षा कर रहा था इतने में देखा—
वही भिखारिन, बच्चे को गोद में लिये चौराहे पर भीख माँग रही थी !
मेरे कानों ने सुना—वही उसका करुण-स्वर—
"बाबू ! एक पैसा ?"
मैंने देखा—उसकी गोद में बच्चा सो रहा था, सोता हुआ भी वह कितना मोहक था ?
कैसा प्यारा लगता था वह छोटा सा शिशु—बरबस प्यार करने का जी करता था !
भिखारिन ने मेरे पास आकर फिर कहा—
"बाबू ! एक पैसा ?"
मैंने उसे एक पैसा दे दिया—हाथ उठाकर उसने आशीर्वाद दिया और जहाँ मैं खड़ा था उससे थोड़ा पीछे हटकर फ़ुट-पाथ पर वह जा बैठी !
मैंने घूमकर देखा—उसकी आँखें किसी को खोज रही थीं !
एक ट्राम आई—भिखारिन सतृष्ण नेत्रों से उधर देखने लगी—
ट्राम चल दी !

भिखारिन ने ठण्ढी साँस लेकर अपने आप कहा--

"अभी तक नहीं आई वे ?"

मैंने सुन लिया--मैं सोचने लगा, किसकी प्रतीक्षा कर रही है यह ?

इतने में दूसरी ट्राम आई, भिखारिन उठकर उधर देखने लगी—

मैंने भी देखा—उस ट्राम से एक युवती उतरी और फ़ुटपाथ की ओर बढ़ी—

मैंने पास आने पर पहिचान लिया—अरे !

सुधा ही तो थी ! सचमुच सुधा थी ! मैं चौंक पड़ा—

कितनी सूरत बदल गई थी उसकी ? पिछले दो साल में—अरे !

वह तो एकदम जीर्ण शीर्ण, एक मरीज़ जैसी दिखाई पड़ती थी !

मैं थोड़ा पीछे हटा—इतने में, भिखारिन उसके पास पहुँच गई—

उत्सुकतावश मैंने सोचा, देखूँ छिपकर ! भिखारिन से सुधा का क्या संबंध ?

आगे-आगे सुधा और पीछे-पीछे भिखारिन जा रही थी। दोनों सड़क के पीछे की गली में मुड़ गईं। मैं अपने को छिपाता हुआ धीरे-धीरे गली के मोड़ पर पहुँचकर ठहर गया और देखने लगा—

सुधा ने काग़ज़ का एक बड़ा सा पैकेट साड़ी के नीचे से निकालकर भिखारिन को दिया ! फिर—बच्चे को एक बार प्यार किया और चुपचाप आगे बढ़कर भीड़ में ग़ायब हो गई !

भिखारिन ने पैकेट खोला—

एक डबल रोटी, थोड़ा मक्खन, शकर और शकर के बीच में एक रुपिया !

यह रहस्य मेरी समझ में न आया !

केवल अनुमान किया कि वह बच्चा शायद सुधा .....!

क्या सुधा विवाहित है ?

[५]

अगले दिन सवेरे—मैं चाय पीने के बाद टेलीफ़ोन डाइरेक्टरी देखने लगा !

सुधा के घर का पता शायद मालूम हो जाय !

पहिले वाला बँगला तो भाड़े पर उठ गया था। वहाँ पता न लगा था !

मिल गया नम्बर और घर का पता भी—सोचा टेलीफ़ोन पर बात करूँ लेकिन कुछ सोचकर मैंने अपना इरादा बदल दिया। घर जाकर मिलना ही ठीक होगा ! मैं कपड़े पहनकर चल पड़ा और बीस मिनट बाद उसके यहाँ पहुँच गया ! नौकर से इत्तिला कराई, भीतर गया, मुझे देखकर सुधा कुछ चकराई परन्तु अपने को बहुत सम्हालकर उसने कहा—

"पधारिये, बड़े भाग्य जो इतने दिनों बाद दर्शन हुए !"

अरे ! सुधा की बोलचाल में भी बड़ा अन्तर आ गया था !

मैंने उत्तर दिया—

"हाँ, इतने दिनों बाद—क्योंकि तुम तो मुझे भूल ही गई थीं !"

सामने वाले सोफ़े पर सुधा बैठते हुए बोली—

"भूल गई थी ? कैसे समझ लिया आपने ?"

मैंने कहा--

"जब मेरे पत्रों का उत्तर ही न मिला तब मैं समझता क्या ?"

सुधा ने आँखें नीची कर थोड़ी नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा—

"मैं थी ही कहाँ बम्बई में ? बाबूजी का स्वास्थ्य खराब हो जाने पर मैं इतने दिनों पहाड़ पर रही उनके साथ। बी. ए. के बाद पढ़ाई भी छूट गई मेरी !"

"और तुम्हारा ही स्वास्थ्य कौन अच्छा है ? देखो तो अपनी सूरत आईने में ?"

सुधा ने एक शीतल निश्वास में अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—

"चलता है यूँही सब—अच्छा, चाय पीजिये ?"

वह उठ खड़ी हुई, मैं बोला—

"तकलीफ़ न करो, मैं चाय पीकर आया हूँ। तुम जानती हो मैं दिन में एक प्याले से ज्यादा कभी नहीं पीता।"

सुधा फिर बैठ गई, मैंने पूछा—

"बाबूजी कैसे हैं अब ?"

उसने कहा—

"अब तो अच्छे हैं मगर कमज़ोरी बहुत है। आते ही होंगे। घूमने ग़ये हैं !"

"और उनकी नौकरी ?"

"नौकरी तो छोड़ दी पिछले साल, तबियत ही ठीक न रहती थी !"

हम दोनों फिर चुपचाप बैठे रहे। मैं देख रहा था कि सुधा की आदत कितनी बदल गई थी ! अपने आपसे वह कुछ बोलती ही नहीं ? इतने में—

उसे ज़ोर की खाँसी उठी—मैंने कहा—

"यह क्या ? नया मर्ज़ ! कुछ दवा खाती हो ?"

वह थोड़ा मुस्कराई—मेरी ओर देखकर बोली—

"दवा ? मेरी दवा तो मौत है मगर मिलती ही नहीं—"

मैं चुप हो गया। थोड़ी देर बाद मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा—

"अच्छा, इजाज़त दो—"

"क्यों ? बाबूजी से तो मिलते जाइये ?"

"फिर आऊँगा—"

मैं वहाँ से चल पड़ा। कुछ नये अनुभव मेरे साथ थे और मन में एक द्वन्द ?

[ङ]

होटल में ही मैंने तीन दिन और तीन रातें बिता दीं! कहीं बाहर न गया!

मेरे मन की अजीब हालत हो रही थी!

सुधा कितनी बदल गई थी? मैं यही सोचता—

फिर—इस परिवर्तन का कारण? कुछ भी समझ में न आता था!

मैंने निश्चय किया कि सुधा से पूछूँगा जरूर चाहे जो भी हो! और वह बच्चा? सुधा से उसके बारे में भी जानना है—लेकिन—लेकिन मुझे यह सब पूछने का अधिकार है या नहीं इसका निर्णय न कर पाता था! जाने कैसे—उसी दिन शाम को मैं फिर सुधा के घर पर जा पहुँचा। वह कहीं घूमने जाने की तैयारी में थी, मुझे देखते ही बोली—

"वाहवा! ख़ूब ग़ायब रहे तीन चार रोज़? चलिये, चौपाटी घूम आयें?"

मैंने उत्तर दिया—

"चलो, मैं भी घूमने ही निकला हूँ—"

हमलोग चौपाटी पर समुद्र-तट के पास पहुँच गये। मैदान में बड़ी भीड़ थी। किनारे किनारे टहलते हुए हमलोग कोई मील भर आगे निकल गये। सुधा ने कहा—

"अब मैं थक गई—आइये, थोड़ा बैठ लें—"

हमलोग समुद्र तट पर रेत में एक ओर जा बैठे। वहाँ पर बिल्कुल भीड़भाड़ न थी। समुद्र की उछलती हुई लहरें आ आकर किनारे से टकरातीं और लौट जातीं! बड़ा सुन्दर दृश्य था!

सुधा उधर ही देख रही थी, मैंने कहा—

"सुधा ! याद है, एक दिन वह भी था जब हमारे मन में उमंगें इन्हीं लहरों की भाँति ऊँची-ऊँची उठा करती थीं और अब......"

सुधा ने उसी तरह सामने देखते हुए उत्तर दिया—

"अब—अब क्या हुआ ? कह डालिये वह भी ?"

मैंने कहा—

"न कहूँगा सुधा ! उसे सदा के लिये मन में छिपा लिया है अब—"

सुधा ने मेरी ओर देखकर कहा—

"समझ गई, आप मुझसे नाराज़ हैं—परन्तु—मेरा कोई दोष नहीं है !"

मैंने बड़ा साहस करके पूछा—

"तुम्हारा विवाह हो चुका है सुधा ?"

"विवाह ? क्या करेंगे आप जानकर ?"

उसकी आँखों में आँसू आ गये। मैंने सोचा वह दुखी हो गई ! उसका गला भर आया—वह कुछ और न बोल सकी, मैंने पूछा—

"सुधा ! तुम्हारा जीवन ऐसा क्यों हो गया है ? तुम इतनी बदल क्यों गई हो ?"

वह सिसक सिसक कर रोने लगी ? मेरे मन में बड़ी व्याकुलता हुई—मैं रुमाल से उसके आँसू पोंछते हुए बोला—

"सुधा ! कैसा दुख है तुम्हें ? मुझे तो बता दो—क्या मुझ पर विश्वास..."

वह बोली—

"ऐसा क्यों समझते हैं आप ? यदि मैं अपना हृदय चीरकर दिखा सकती तो—तो आप जानते—अच्छी तरह जान जाते कि सुधा पहिले जैसी क्यों नहीं रही !"

मैंने थोड़ा सावधान होकर कहा—
"सुधा ! आज से कई दिन पहिले—सैण्ढर्स्ट रोड के चौराहे पर मैंने तुम्हें—एक भिखारिन जिसकी गोद में बच्चा था—और गली में जाकर तुमने उसे......"
सुधा मेरी बात सुनते सुनते घबराकर बोली—
"अयँ ! तब तो आप—आपने मुझे देखा था ? सचमुच देखा था ?"
मैंने सिर हिलाकर कहा—
"हाँ, मगर सुधा ! वह भिखारिन कौन है ? और वह बच्चा ?"
सुधा ने एक ठण्ढी साँस लेकर कहा—
"तो आप जानना चाहते हैं सब कुछ ? अच्छी बात है, सुन लीजिये—सुधा को विष, क्यों और कैसे बनना पड़ा—मगर मुझसे घृणा न कीजियेगा सब कुछ जान लेने पर ? हाँ, कभी-कभी मेरे लिये दो आँसू......"
वह फिर रो पड़ी ! मैंने उसे समझाते हुए कहा—
"सुधा ! रहने दो—मैं कुछ नहीं जानना चाहता—बीती बातों का जिक्र ही क्या ! चलो, अब चलें—"
मगर वह न मानी—
उसने अपनी जीवन कथा मुझे सुनाई ! मैं मंत्र-मुग्ध-सा सुनता रहा ?

[च]

पास के घंटाघर में टन टन करके नौ बज गये !
सुधा ने कहा—
"सुना आपने पिछले दो वर्षों का इतिहास ? अब मेरी भूल का प्रायश्चित्त यही है कि मैं अपने पाप को अपना बनाकर रखूँ—"

मैं बोल उठा—
"पर—वह पाप तुम्हारा तो नहीं है सुधा ? जिस समाज ने तुम पर यह अत्याचार किया है, वह उसी का पाप है ! तुम व्यर्थ ही अपनी आत्मा को दुखी करती हो--सुधा ! मत सोचो इतना इन बातों को ?"
"कैसे न सोचूँ ? पुरुष के अधिकार स्त्री के अधिकारों से अधिक माने जाते हैं—मैं किसी को दोष क्यों दूँ ! अपनी आग में आप ही जलूँगी और किसी से कुछ न कहूँगी--जानते हैं आप, बाप की आबरू बेटी न रखेगी तो कौन रखेगा ?"
मुझे बड़ा क्रोध आ रहा था अपने समाज पर--मैंने कहा—
"सुधा ! बाप और आबरू ? क्यों ऐसा कहती हो ? मैं तो जीवन भर ऐसे पापी को क्षमा नहीं कर सकता—"
"यही मुझमें और आप में अन्तर है--जानते हैं आप, जीवन का यह अभिशाप मेरा अपना है और मैं उसे अपना ही बनाकर रखना चाहती हूँ--"
"सुधा ! क्या कह रही हो तुम ?"
"मैं सच कह रही हूँ, ऐसा ही निश्चय कर चुकी हूँ—"
"निश्चय भी कर चुकी हो ! लेकिन सुधा ! ऐसा कभी न होगा, मेरे जीते जी—"
वह किंचित् अव्यवस्थित होकर बोली—
"क्यों ?"
"मैं भी तुम्हारे पाप का, सुख-दुख का भागीदार बनूँगा सुधा ! मुझे इतना तो अधिकार दे दो—"
"नहीं नहीं, आप यह विचार छोड़ दीजिये—मुझे भूल जाने की कोशिश कीजिये, इसी में आपकी भलाई है !"
"कैसे भूल जाऊँ सुधा ! जीवन का क्रय-विक्रय एक ही बार हुआ करता है, दो बार नहीं—"

पर—पर आप सुखी न हो सकेंगे मुझे पाकर, मैं जानती हूँ, अच्छी तरह जानती हूँ! समय ने इतने दिनों में सब कुछ सिखा दिया है और—तब—तब मेरी चिन्ता और भी बढ़ जायगी ?"

"नहीं सुधा ! तुम ऐसा क्यों कहती हो ?"

"कह रही हूँ, समाज की बात ! वही समाज, जिसका डर, मुझे, तुम्हें, सभी को, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में अवश्य रहता है। उसका मुँह कौन बंद करेगा ? मैं कलंकिनी हूँ, पापिनी हूँ, मैं किसी को अपना मुँह दिखाना नहीं चाहती—केवल कर्तव्य ! आह !"

वह चुप हो गई। उसकी आँखों के आँसू बंद न हुए थे ! मैं बोला--

"सुधा ! यह सब न सोचो--हमारा जीवन, उस समाज से अलग, बहुत दूर, एक नये समाज का निर्माण करेगा, जहाँ प्रेम, उदारता, स्नेह और ममत्व के आधार पर एक नये संसार की सृष्टि होगी !"

"और वह नया संसार—वह भी, सुधा के अभिशाप की परछाँई पड़ते ही नरक के समान अशान्तिमय और पतित बन जायगा—यह भी सोचा है आपने ?"

"सुधा ! तुम भूलती हो—वह अभिशाप तुम्हारा है इसीलिये मेरा है ! तुम मेरी हो—मुझसे अलग, अब तुम्हारा अस्तित्व न रह सकेगा—बोलो, एक बार हाँ कहो सुधा !"

सुधा ने मेरे पैरों पर अपना सिर रख दिया !

उसके आँसू मेरे पैरों को भिगो रहे थे ! मैंने समझा—

पश्चात्ताप की पुण्य सलिला भागीरथी ने सुधा के मानसिक पापों को धो डाला ! और अब—अब वह पवित्र हो गई ! मैंने उसे हृदय से लगा लिया ! फिर—कुछ दिनों बाद—

मेरा उसका विवाह हो गया—सिविल-मैरेज !

मेरा खोया हुआ सुख, दो बरस बाद मुझे पुनः मिल गया!
हमारा जीवन, एक नई गति पाकर प्रेम के आधार पर मुक्त प्रवाह में बह चला!
मेरा संसार सुधामय हो उठा लेकिन—

[छ]

मैंने कई बार सुधा को अकेले में बैठे कुछ सोचते पाया—
उसका उदास चेहरा, गीली आँखें, उसके मन का दुख कहे देती थीं!
परन्तु, जब मैं पूछता तब वह कोई न कोई बहाना बताकर टाल देती—या बातचीत का विषय ही बदल देती!
वह थी तो अब पहिले जैसी ही सुधा—
वैसी ही चंचल, हँसमुख और खिलाड़ी, परन्तु—
कभी कभी जाने क्यों बड़ी गम्भीर बन जाती थी।
उस दिन कोई त्योहार था। मैंने सुधा से पूछा—
"सुधा! चलोगी मेला देखने आज चौपाटी पर?"
उसने कहा—
"जी नहीं करता मेरा, आप हो आइये—"
मैंने पूछा—
"क्यों, कैसी तबियत है?"
वह उठ खड़ी हुई—पीठ फेर कर बोली—
"अच्छी हूँ—"
"फिर, चलो न, घड़ी भर जी ही बहल जायगा?"
"उहुँ, आप हो आइये—"
मैं उसके सामने जा खड़ा हुआ, मैंने कहा—
"सुधा! तुम कुछ छिपाती जरूर हो मुझसे? मैंने कई बार

पूछा मगर तुमने बताया नहीं—आज बताना पड़ेगा ? क्या सोचा करती हो तुम ?"

वह एक माँगी-सी हँसी हँसती हुई बोली—

"आप भी ख़ूब हैं—अरे, मैं काहे को दुखी होती हूँ ! आपको पाकर मैंने तो सब कुछ पा लिया ! सब सुख ही है—दुख कहाँ ?"

"सच कहती हो ?"

"सच ही समझिये—क्या मेरा विश्वास नहीं आपको ?"

"पगली कहीं को ! अच्छा, देखा जायगा—"

मैं भी कुछ सोचने लगा फिर कपड़े पहिनकर मैंने कहा—

"तो फिर जरा घूम आऊँ थोड़ा—मेला देख आऊँ ?"

वह बोली—

"हाँ हाँ जाइये—मगर मेरे लिये क्या लाइयेगा ?"

मैंने सहज ही हँसकर जवाब दिया—

"खिलौना—क्यों ना ?"

"हाँ हाँ—ले आइयेगा ज़रूर !"

वह मुस्करा रही थी। मैं घर से निकलकर चौपाटी की ओर चला।

रास्ते में—

तरह तरह के विचार मन में चक्कर मार रहे थे !

सुधा ने कुछ न बताया—आज भी टाल दिया !

फिर—

उसके जीवन का यह कैसा रहस्य है ?

इसे तो सुलझाना ही होगा !!

[ज]

चौपाटी पर—

मेले के बीच में मैं चला जा रहा था यों ही सोचता हुआ—

सामने देखा—
वही भिखारिन !
सैण्ढर्स्ट रोड पर जिसे देखा था !
वह बच्चे को गोद में लिये भीख माँग रही थी मेले में—
बच्चे को देखते ही मुझे कुछ याद आया—
मेरे मन ने प्रश्न किया—
समझे ?
हृदय ने ही उत्तर दे लिया—
हाँ !
सुधा की आँसुओं से भीगी हुई आँखें सामने आ गईं ?
माता शब्द की व्यापकता और उसका अर्थ मेरी समझ में आने लगा ! मैं अपने मन की पहेली को सुलझाने लगा—
सुधा का सुख—यही मेरे जीवन का मूल-मंत्र है !
फिर—फिर क्या करूँ ?
मैं भिखारिन की ओर बढ़ चला—
भिखारिन ने भी मुझे देखते ही बड़ी आशा से मेरी ओर हाथ बढ़ाया—
मैंने उसे संकेत किया—
"उधर चलो—किनारे की तरफ़ !"
वह ठिठकी, मैं बोला—
"डरती क्यों है ? चल न ?"
वह मेरे पीछे पीछे चली। सड़क के किनारे आकर मैंने कहा—
"तुम एक पैसा माँगती हो, क्यों न ?"
उसने कहा—
"जी हाँ बाबू ! परमात्मा आपका भला करे !"
मैंने जेब से रुपये निकाले—
उसके हाथ पर—

एक, दो, तीन, चार, पच्चीस तक गिनता चला गया !
भिखारिन आश्चर्य से मेरी ओर देख कर बोली—
"यह क्या ? रुपये ? इनका क्या होगा ?"
मैंने उससे कहा—
"तुम ले लो—तुम्हारे लिये तुम्हारी उन्हीं बहूजी ने भेजे हैं !"
उसने प्रसन्नता से खिलकर कहा—
"भगवान् उनको अच्छा रखे—बड़ी नेक हैं वह !"
अपनी फटी हुई धोती के छोर में उसने रुपये बाँध लिये !
वह हर्ष से फूली न समाती थी !
अपने जीवन में शायद ही उसने इतने रुपये कभी पाये होंगे !
मैंने कहा—
"भिखारिन !"
वह बोली—
"क्या है बाबू !"
"देखो, बहू जी ने बच्चें को माँगा है, दो एक दिन अपने पास रखेंगी, फिर—फिर तुम्हें दे देंगी !"
भिखारिन के चेहरे पर गम्भीरता छा गई ! बच्चे की ओर से बड़ी ममता थी उसे ! वह बोली—
"बच्चा रोयेगा—उनके पास कैसे रहेगा ?"
"तुम इसकी चिन्ता न करो, इधर लाओ, मैं ले जाता हूँ—"
इतना कह कर बच्चे को मैंने उसकी गोद से ले लिया--
भिखारिन कुछ दुखी हो गई ?
बच्चा रोता न था ! भिखारिन ने उसे प्यार करके कहा—
"बाबूजी ! जल्दी दे जाना वापस, अच्छा ?"
मैंने उत्तर दिया—
"हाँ हाँ तुम न घबराओ—"
मैं बच्चे को लिये हुए वहाँ से चल पड़ा—

जाने कहाँ की तेजी आ गई थी मेरे पैरों में उस दिन !
मैंने एक बार पीछे मुड़कर देखा—
भिखारिन अपनी आँखों में आँसू भरे बच्चे की ओर देख रही थी !
मैं आगे बढ़ा—
मेले की भीड़ चीरता हुआ मैं रास्ते पर आ गया !

[झ]

रास्ते में—
तैयार कपड़ों की एक दूकान पर पहुँच कर—
मैंने बच्चे की नाप के कुछ नये कपड़े ख़रीद कर उसे पहिनाये—
बच्चा और भी सुन्दर लगने लगा !
मैं घर पहुँचा जल्दी से—
सुधा ने बच्चे को देखा—वह—
दौड़ कर मेरे पास आई !
मैंने कहा—
"खिलौना मँगाया था तुमने ? ले आया हूँ—मगर इसे हिफ़ाज़त से रखना—"
वह बच्चे को छाती से लगाये प्यार कर रही थी बार बार !
मेरी ओर देख कर सुधा मुस्कराई—
वह ममता की बात थी !
लगभग एक सप्ताह बाद—
जयपुर से मेरे एक मित्र का पत्र आया। उसने जयपुर आकर प्रैक्टिस शुरू करने की सलाह दी थी। जयपुर दरबार में उसकी बड़ी पहुँच थी ! मैंने अवसर चूकना ठीक न समझा—
दूसरे ही दिन हम लोग जयपुर चले गये !

अब आजकल—
मेरी बैरिस्टरी—
और मेरी गृहस्थी—
मजे में चलती है और मैं बहुत सुखी हूँ !
सुधा भी सुखी है—
उसका खिलौना—
अब चार बरस का होगया—बोलता है अब तो !!